राष्ट्रीय कविताएं

१९५७ शताब्दिसमारोह प्रकाशन

प्रकाशन शाखा
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण : १० मई, १९५८
द्वितीय संस्करण : जुलाई, १९५८

मूल्य:
५० नये पैसे

संकलनकर्त्ता
श्री विद्यानिवास मिश्र

मुद्रक:
एम० जी० शोम, अधीक्षक
राजकीय मुद्रणालय, ऐशबाग, लखनऊ

भूमिका

प्रस्तुत संग्रह में चुनी हुई राष्ट्रीय कविताओं का संकलन किया गया है। भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन की शतवार्षिकी के अवसर पर उन सभी गूंजों और अनुगूंजों की याद आनी स्वाभाविक है, जिनसे आन्दोलन, उत्पीड़न और संघर्षों के पिछले वर्ष मुखरित और गुंजित होते रहे हैं। इस दृष्टि से इस संग्रह का महत्व ऐतिहासिक है।

इस संग्रह से हमारे देश की दो पीढ़ियों के हृदय की धड़कनों का सम्बन्ध है। एक उसकी जिसने ऊंचे स्वर से इन गीतों को गाया है और दूसरी वह जो इसे अपनी प्रेरणा के मूल स्रोत के रूप में ग्रहण करेगी। हम इन दोनों पीढ़ियों के बीच में खड़े लोग इस सत्य का अनुभव सबसे अच्छी तरह कर सकते हैं।

हिन्दी भाषा सदैव ही से जन-साधारण की भाषा रही है इसलिए जन-आन्दोलन का जितना सही और प्राणप्रद प्रतिनिधित्व इस भाषा और साहित्य के माध्यम से हुआ है उतना सम्भवतः और भाषाओं के माध्यम से नहीं हुआ है। १८५७ तथा उसके बाद इस देश की जनता देश की मुक्ति के लिए अविश्रांत संघर्ष करती रही है। इन सभी आन्दोलनो की छाया हिन्दी साहित्य पर देखी जा सकती है। यह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी के कवि स्वतंत्रता की भावना से निरन्तर अनुप्राणित होते रहे हैं। भारतेन्दु से लेकर आज तक के हिन्दी के साहित्यकारों की चुनी हुई इन कविताओं के देखने से हमारे साहित्य की स्वस्थ परम्पराओं का आभास बड़ी ही स्पष्टता से होता है।

इन गीतों को जनता ने पूजा के गीतों की तरह श्रद्धा से गाया, श्रद्धा ही इन गीतों का सबसे बड़ा मूल्य होगा। हम भी इन गीतों को उसी श्रद्धा के साथ स्वीकार करेंगे।

भगवतीशरण सिंह

विषय-सूची

भारत-भूमि

[भारत-गीत—कार्तिक शुक्ल १२, सं० १९७५]

जय जय भारत - भूमि हमारी ।

१

जय जय रंजिनि, जय अघ-गंजिनि
संपति-सुमति-सुकृत सुख-रंजिनि
बुध - जन-हृदय - सरोवर - कंजिनि
सकल सुकर्मन की महतारी
जय जय भारत - भूमि हमारी ।

२

जय हिम शृंगा, सुर-सरि गंगा
साधु-समाज सुजन - सतसंगा
जग जग—क्लेश - प्रनाश - प्रसंगा
सुमिरत भरत मोद मन भारी
जय जय भारत-भूमि हमारी ।

३

जय भुवि-थंबिनि, सिंधु-नितंबिनि
त्रिभुवन-प्रेयसि, प्रेम-प्रलंबिनि
जयति जननि निज जन-अवलंबिनि
जय तुअ सुअन तपोबल-धारी
जय जय भारत-भूमि हमारी ।

४

जय अति सुन्दरि, जय सुख-कंदरि
सती स्वधर्म-अतीव-अतंदरि
जगत-जोति, जग-सृष्टि-धुरंधरि
श्रीधर प्रनत प्रान बलिहारी
जय जय भारत-भूमि हमारी ।

श्रीधर पाठक

देश-गीत

[भारत-गीत—कार्तिक शुक्ल १५, सं० १९७४]

जय जय प्यारा भारत-देश ।

१

जय जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा
जगत-मुकुट, जगदीश-दुलारा
जग-सौभाग्य, सुदेश
जय जय प्यारा भारत-देश ।

२

प्यारा देश, जय देशेश
अजय अशेष, सदय विशेष
जहां न संभव अघ का लेश
संभव केवल पुण्य-प्रवेश
जय जय प्यारा भारत-देश ।

३

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवी का
प्रेम-मूल, प्रिय लोकत्रयी का
सुललित प्रकृति-नटी का टीका
ज्यों निशि का राकेश
जय जय प्यारा भारत-देश ।

४

जय जय शुभ्र हिमाचल-शृंगा
कल-रव-निरत कलोलिनि गंगा
भानु प्रताप चमत्कृत अंगा
तेज-पुंज तप-वेश
जय जय प्यारा भारत-देश ।

५

जग में कोटि-कोटि जुग जीवै
जीवन-सुलभ अमी-रस पीवै
सुखद वितान सुकृत का सीवै
रहै स्वतंत्र हमेश
जय जय प्यारा भारत-देश ।

श्रीधर पाठक

भारतोत्थान

[भारत-गान—माघ कृष्ण ७, १९३६]

भारत, चेतहु नींद निवारी
बीती निशा उदित भए दिन-मनि, कबकौं भयौ सवारो
निरखहु यह शोभा-प्रभात वर, प्रभा भानु की अद्भुत
किहि प्रकार क्रीड़ा-कलोल-मय विहग करहिं प्रात-स्तुत
बिनस्यौ तम-परिताप पाप संग नभ नखत्र बिलगाने
निशिचर खग भूचर तजि तजि सब अमन भये इक आने
विकसे कुमुद, मधुर-मारुत-मद-सने भौंर गुंजारत
बाला, नवल-कमल-कोमल-वपु, उठि निज केश संवारत
लगे सबै निज काज परस्पर प्रेम-पाग-रस चाखन
देखौ बरति रह्यौ आनन्द-सुख, उठौ खोलि दोउ आंखन
गहरी नींद परे मति सोवहु, बात हमारी मानहु
"सोय खोय जागत पावत" जग कहन सत्य अनुमानहु ।

श्रीधर पाठक

सुसंदेश

[भारत-गीत—१४-११-१६१६]

अहो छात्र-वर-वृन्द, नव्य-भारत-सुत, प्यारे
मातृ-गर्व-सर्वस्व, मोद-प्रद, गोद-दुलारे
अहो भव्य भारत भविष्य निशि के उजियारे
शुभ आशा विश्वास व्योम के रवि, विधु, तारे
गृह-जीवन-नव-ज्योति, प्रेम के प्रकृत स्रोत तुम
विनय-शील-उद्योत, जगत के सुकृत-स्रोत तुम
मातृ-भूमि के प्राण, मातृ-सुख-संप्रदान तुम
मातृ-सत्व-संत्राण-कुशल, भुज-बल-निधान तुम
आर्य-वंश-अक्षय-वट के अभिनव प्रवाल तुम
आर्य-संत-जीवन-पट के सुठि तंतु-जाल तुम
आर्य-वर्ण-आश्रम-उपवन के फल रसाल तुम
आर्य-कीर्ति तंत्री-गुण के स्वर, शब्द, ताल तुम
निज-सुजन्म-संतति-सरोज-वन के मृणाल तुम
मानव-कुल-मानस-हृद के मंजुल मराल तुम
जग-सुकृत्य-रत भारत के सौभाग्य-भाल तुम
प्रिय स्वदेश अंतर आत्मा के अंतराल तुम
सुरुचि, सुवृत्ति, सुतेज, सुप्रेरित-मति-विशाल तुम
सुघर सुपूत सुमाता के लाड़ले लाल तुम
भारत-लाज-जहज-सुदृढ़-सुठि-कर्णधार तुम
भारति-कंठ-विहार-विशद-मंदार-हार तुम
निज-अभिरुचि निज-भाषा-भूषा-भेष-विधाता
निज सत्ता, निज पौरुष, निज स्वत्वों के त्राता

निज-परता-भ्रम-रहित करौ निज-हित-विचार तुम
हित-परता-क्रम-सहित करौ पर-हित-प्रचार तुम

सत-सेवा-व्रत धार जगत के हरौ क्लेश तुम
देश देश में करौ प्रेम का अभिनिवेश तुम

इस विधि से निस्संग करौ सेवा-प्रसंग तुम
फिर फिर पर-हित-हेतु भरौ उर में उमंग तुम

सब विधि यों युव-वृन्द, बनौ नर-प्रवर ! वंद्य, तुम
त्यों हरि-पद-अरविंद-भ्रमर, भुवि-समभिनंद्य तुम ।

श्रीधर पाठक

आरती

['महारथी' आश्विन १६८४ वि० में प्रकाशित]

भय्या ! कुछ सुन है, वह कितना भीषण आर्तनाद होगा ?
कितना उस शीतल शोणित के कण-कण में विषाद होगा ?

निरवलम्ब, निर्धन, निर्बल वे—किया न तुमने अभी प्रयाण
जाओ, कहीं न भाग सकें प्रतिकारहीन पापी के प्राण ।

उनके एक एक आंसू पर लहरा देना लोहित सिन्धु ।
कौन कहेगा वीर तुम्हें यदि बन न सके दीनों के बंधु ?

ठुकरा दो आरती-आर्त्त को
देकर प्राण निभा लो टेक ।

समुद करूंगी वीर बन्धु के
विजयी मस्तक का अभिषेक ।।

चारुदत्त

वीर की कामना

[महारथी—अक्तूबर, १९२७]

खिदमते मुल्क का जब दिल में ख्याल आएगा।
खुद ब खुद पास चला हुनरो कमाल आएगा॥

निकलेंगे सर से कफ़न बांध जो शैदाए वतन।
नजर तब काम कोई कैसे मुहाल आएगा॥

सबसे पहिले ही मैं मक़तल में पहुंच जाऊंगा।
जब वतन के लिए मरने का सवाल आएगा॥

कुशतए तेग़ सितम होगा मेरे लाशे पर।
खून रोने के लिए माहे हिलाल आएगा॥

अपने जल्लाद की फिर फिर मैं बलाएं लूंगा।
खींचने ज़िन्दगी में गर मेरा ख्याल आएगा॥

बेकसी मेरी मनाएगी मेरा मातम और।
गुस्ले मय्यत के लिए रंजो मलाल आएगा॥

आग लग जायगी खुद सोज़े वतन से मेरे।
लकड़ियां चार चिता पर कोई डाल आएगा॥

शोले उठ उठ के चिता से मेरी दिखलायेंगे।
तब नज़र ख़ल्क को भारत का जलाल आएगा॥

बनके इंगलैन्ड मसीहा तू ही मुर्दों को जिला।
वरना किस काम तेरा हुस्नो जलाल आएगा॥

साथ मक़तल में 'मुसाफिर' को भी लेते जाना।
यह भी अरमान वहां दिल के निकाल आएगा॥

श्री सुखलाल 'मुसाफिर'

अत्याचारी से

['महारथी'—अक्तूबर, १९२७]

जिस पर आंखें गड़ा रखीं, हम लिये हथेली पर आते ।
धन, वैभव, स्वातंत्र्य, छिने अब सिर छिनवाने को लाते ।।
एक नहीं बहुतेरे हैं हम मां के मस्ताने, प्यारे ।
शीश काटते थक जावेंगे, रो देवेंगे हत्यारे ।।
संध्या समय मिलाने जगती, ऊपर नीचे की लाली ।
कौन अधिक है लाल गगन या मां की गोदी मतवाली ।।
यह मत समझो व्यर्थ चला जावेगा पगलों का बलिदान ।
शुष्क हड्डियों के कल ही, फिर वज्र बनेंगे काल समान ।।

हरिकृष्ण विजयवर्गीय 'प्रेमी'

रण-विदा

['महारथी'—दिसम्बर, १९२७]

मां ! जीवन - अंजलि में मेरे तर्पण - हित कुछ अर्पित फूल ।
उन्हें करूँ क्या ? चढ़ा दिया, लो, चरणों की लेने दो धूल ।।
'हृदय - द्वार' हो गये बन्द, कोने में अब क्रन्दित 'अनुराग' ।
अरे सिखाना है जग को जीने का सच्चा राग विराग ।
इस निःसीम गगन के अन्दर, कभी न होगा उल्कापात ।
फिर न देखने में आवेगा, वधिकों का भीषण उत्पात ।।
हो जाने दो नर्त्तन अघ का, बस, मां ! है यह अन्तिम वार ।
दे देती आहों पर तेरी चंडी को जग का अधिकार ।।
झुलस न जायें हृदय-कुसुम, उठि वितरण करते रहें सुगन्ध ।
सौरभ - लोलुप अलि को मञ्जुल भावों ही से कर दें अन्ध ।।
गूंज उठे यह चतुःपार्श्व में, गर्वीला मन - निर्भय नाद ।
'बलि हो जाऊंगी' मां - हित, मां ऐसा दे तू आशीर्वाद ।।

महादेवी वर्मा

कड़खा

['महारथी'—दिसम्बर, १९२७]

अरे तू कैसो सिंह कुमार ?
केहरि-कुल में जन्म पाय शठ, भयो सिंह ते स्यार ।।

तजि दुर्गम गिरि-गुहा मूढ़ ! कत सेवत मञ्जुल कुञ्ज ।
डरत न तोहि क्लीव गिनि नेकहु, क्रीड़त कुञ्जर-पुञ्ज ।।

कित तेरो तीखन नख डाढ़ै, बज्रोपम विकराल ।
कित तेरो वह काल अग्नि सम, ज्वाल-ज्वलित मुख लाल ।।

अरे उछरि अजहूँ किन धावत, करि गर्जन गम्भीर ?
उथल पुथल बन मण्डल मे करि, है कँपाय तब वीर ।।

भोगत राज आज तो गृह में, शश शृंगाल स्वाधीन ।
लागति लाज न तोहि निलज कछु, बन्यो श्वान सम दीन ।।

तेरे कुल में पराधीनता, सब सों भारी पाप ।
सो कलंक किन धोवत, कायर मेटि सकल सन्ताप ।।

लै चपेरि चंगुल मे अरि गण, रण में अडिग अडोल ।
प्रखर नखन डाढ़न सों तिन सँग, क्यों नहि करत कलोल ।।

मत्त गयन्द कुम्भ शोणित सों, रंगि निज केसर आज ।
निज कर सों करि राजतिलक निज, क्यों न होत मृगराज ।।

वियोगी हरि

लगन

['महारथी'—जनवरी, १९२८]

यही दिन था शहीदे क़ौम ने जब प्राण त्यागा था।
यही दिन था हमारा रहनुमा जब हमसे बिछुड़ा था।
जनाज़ा धूम से उस वीर का हमने उठाया था।
चढ़े वह देश वेदी पर यही वर उसने मांगा था।
विजय की शुभ घड़ी थी वह उसे हम गम नहीं कहते।
वह शादी क़ौम की थी हम उसे मातम नहीं कहते ॥१॥

तपाकर आतशी शोलों ने उसको कर दिया कुन्दन।
जो लौ उट्ठी तो ऐसी—हो गये दोनों जहां रौशन।
घिसा जब आस्मां ने बन गया मलयागिरी चन्दन।
फ़ना ने गोद में लेकर वफ़ा का भर दिया दामन।
झुकाये शीश पहुँचे देव स्वागत हो तो ऐसा हो।
बढ़ीं देवाङ्गनाएं उन चरण-कमलों की पूजा को ॥२॥

सुपथ में कर्मवीरों के लिए ख़ौफ़ो-ख़तर कैसा।
जो मरता देश के हित—गोलियों का उसको डर कैसा।
न हटती टेक वीरों की क़ज़ा कैसी क़शर कैसा।
जो है आज़ाद फिर उसको ये घर कैसा वो घर कैसा।
न ठहरा भीरुता का भूत उनके सामने दम भर।
बनी वह राख की चुटकी चिता की लकड़ियां जलकर ॥३॥

अगर है लाग ईश्वर की—भुला दे राग दुनिया का।
अगर कुछ भी वतन का पास है तो कर न ग़म जां का।
बहा दे खूं, बहाने दे न लेकिन खून अरमां का।
मिटाना जुल्म को शेवा यही है मर्दे मैदां का।
जो आता है तो आ, रक्खे हुए सर को हथेली पर।
शहीद आते हैं पूजा को शहीदों की समाधी पर ॥४॥

सता लें दर्दमन्दों को भले मज़हब के दीवाने।
हमें क्यों है लगन बलिदान की, परमात्मा जाने।
गिरेंगे अब शमअ पर ज़ुल्म की हम मिस्ल परवाने।
दिखा दी है हमें मंज़िल हमारे धर्म-नेता ने।
हम आते हैं तेरी ही राह से तेरी इबादत को।
शहीदे क़ौम हम भूले नहीं तेरी शहादत को ॥५॥

'दिल'

वे

['महारथी'—फरवरी, १९२८]

आमन्त्रण दे विदाओं से खेल खेलने वाले।
दुनिया के सारे विभवों को दूर ठेलने वाले।
दानी ऐसे सब कुछ देकर के भी देने वाले।
मानी ऐसे सुख के बदले संकट लेने वाले।
आत्म-त्याग की भी सीमा है, पर उससे भी आगे—
हँसते-हँसते चले गये, वे वीर प्रेम में पागे।
थे साहस की मूर्ति, भरी थी बिजली-सी नस-नस में
फिर वे कैसे रह सकते थे सिंह भला पर-वश में ?
"स्वाधीनता-समर सागर की लहरों पर नाचेंगे।
प्रेम-भरी पाती कृपाण की धारों पर बांचेंगे।
सोयेंगे सुख-सेज समर में उसको गले लगाके।
जिसमें जीवन की नूतनता छिपी हुई है जाके"
थे ऐसे अरमान अनोखे उन वीरों के मन में।
सफल सर्वथा हुए अहा ! वे हैं जिनके साधन में।

*   *   *

फिर हम क्यों रोयें, चिल्लायें, सीखें वैसा मरना।
जिस मरने में भी जीवन का झरता गौरव-झरना।

*   *   *

जाओ ! वीरो ! स्वर्ग-धाम में अमर कीर्त्ति फैलाये।
ऐसे वीरों के निवास में, वह भी गौरव पाये।
पर क्या चैन मिलेगा क्षण भर भैया वहां बताओ।
बिन प्यारी मैया के देखे, कैसे नयन जुड़ाओ।
इससे यह विश्वास अटल है सत्वर तुम आओगे।
प्रभु से देश-दशा कहने में देर नहीं लाओगे।
बस इस आशा में ही कुछ-कुछ धीरज हम पाते हैं।
और तुम्हारे बलिदानों की कीर्ति-कथा गाते हैं।

'चातक' कविरत्न

हे वीर वर

['महारथी'—फरवरी, १६२८]

कैसे तोन तुपक निहारि आखि तोपि लेहि,
बार-बार छाती जो छुरी के छुए धरके।
कैसे उतपात नाम ही ते ना मकान रहे,
थर-थर गात कापि जात पात खरके।
'हरिऔध' यहै कबौ कैसे अरि सौहैं होहि,
जात है रसातल का पांव ही के सरके।
कैसे डरें दौरि कै न द्वार के किवारे देहि,
का करे बेचारे हैं दुलारे वीर बर के।।
काको चार बांह है बड़ो है बलवान कौन,
का न हमें वीरता विभूति को सहारो है।
काहे फिर अरि अवलोकत बजत दांत,
काहे भूत अभिभूत होत भाव सारो है।
'हरिऔध' काहे रोम रोम है भभर भरो
काहे भीति पूरित विलोचन हमारो है।
थरकत उर काहे खरकत पात ही के,
थर-थर काहे गात कांपत हमारो है।।

'हरिऔध'

अभिलाषा

['महारथी'—फरवरी, १६२८]

नहीं चाहता सुखद राज्य-पद, नही विश्व-वैभव-भण्डार।
नहीं गगन का चन्द्र सूर्य बन, भोगू स्वर्गिक-सुख-शृंगार।
नहीं दिव्य मणि माला भूषित, कण्ठ बनाऊंगा अपना।
नहीं स्वार्थ का यत्किञ्चित भी, देख सकूंगा मैं सपना।
नहीं देख बाधा-विपदाएँ, हृदय जरा भी तुम कंपना।
नहीं कर्म करने में प्यारे, नयन बन्धुओ! तुम झपना।

* * *

बान यही हो जन्म जन्म ही,
रखें देश - माता का मान।
काम पड़े जब, बलिवेदी पर,
हंसते-हंसते हों बलिदान।

'शांत'

मोती

['महारथी'—मार्च, १६२८]

कुछ थोड़े से मुकता देखे, राजमुकुट में जड़े हुए।
असंख्यात हैं, सिन्धु-गोद के, अन्धकार में पड़े हुए।।
"है अभाग्य मुकताओं का यह" या विधि की विधि इसे कहे ?
"हैं अत्यल्प जौहरी जग में", या दुर्लभ निधि इसे कहे ?

* * *

कुछ चढ़ते हैं सिर पर सुर के, कुछ के बनते हैं हृद-हार।
फूल-फूलकर मुरझा जाते, बन-बागों में अपरम्पार।।
जाना उन्हें न केवल, मानव-कुल ने उनको दिया बिसार।
क्या यह दुख की बात नहीं है, हो जीवन उनका निस्सार ?

सैयद अमीर अली 'मीर

भारत जननी

['भारत जननी' नाटक से]

क्यों माता मुख मलिन ह्वै रही जिय में कहा उदासी।
क्यों घर छोड़ि त्यागि आभूषण बैठी ह्वै बनबासी।।
कहां गयी वह मुख की सोभा कित वह तेज गँवायो।
कित वह श्री बल बुधि उछाह सब कछु नहिं आज लखायो।।
कहां गयी वह राजभवन कित धवल धाम बिनसाए।
कहँ वह ओज प्रताप नसानो वैभव कितहि दुराए।।
सदा प्रसन्न तेज जुत मुख तुव बाल अरक छबि छाजै।
सो दिन ससि सम पीत बरन ह्वै आज तेज बिन राजै।।
धूरि भरो तुव अलक देखि कै मेरो जिय अकुलाई।
छत्र चँवर नित ढुरत जौन मुख तहँ मनु छुटत हवाई।।
कित सब वेद पुरान शास्त्र उपवेद अंग सह भागे।
दरसन दुरे कितै जिनके बल तुव प्रताप जग जागे।।
आजु न कोऊ संग अकेली दीन होइ बिलखाई।
बैठी क्यों इत जननि कहौ क्यो बुधि गुन ज्ञान नसाई।।

(भारतमाता के पास जाकर कई बेर जगाकर)

क्यों बोलत नहिं मुख माय बचन जिय व्याकुल बिनु तुव अमृत बयन।
क्यों रूठ रहौ अपराध बिना नहिं खोलत क्यो तुम जुगल नयन।।
बिनती न सुनत हित जिय न गुनत भई मौन कियो जागत ही सयन।
मुख खोलौ बोलौ बलि बलि गयी दिन ही मे काहे करत रयन।।
बिछुरत अब तो फिर कठिन मिलन लै जात जवन मोहि करके जयन।।

*　　　*　　　*

भारतजननी क्यो उदास। बैठी इकली कोउ नाहिं पास।।
किन देखहु यह रितुपति प्रकाश। फूली सरसों बन करि उजास।।

खेतन में पकि रहे लखहु धान। पियरान लग भरि स्वाद पान।।
रितु बदलि चलो देखहु सुजान। अबहू तौ चेतौ धारि ज्ञान।।
भयो सुखद सिसिर को माघ अन्त। लखि सबहित मिल गायो बसन्त।।
तब क्यों न बाँधि कंगन ससन्त। साजत केसरिया भूमि कन्त।।

* * *

मलिन मुख भारतमाता तेरो।
बारि झरत दिन-रैन नैन सों लखि दुख होत घनेरो।।
तुव मुख ससि देखत मन जलनिधि कढ़त रह्यो चहुँ फेरो।
सोइ मुख आजु बिलोकत दुख सों फट्यो जात हिय मेरो।।

मलार

लखौ किन भारतवासिन की गति।
मदिरा मत्त भए से सोअत ह्वै अचेत तजि सब मति।।
घन गरजै जल बरसै इन पर बिपति परै किन आई।
ये बजमारे तनिक न चौंकत एसी जड़ता छाई।।
भयो घोर अँधियार चहूँ दिसि ता महँ बदन छिपाए।
निरलज परे खोइ आपुनपौ जागतहू न जगाए।।
कहा करै इन रहि के अब जिय तासों यहै बिचारा।
छोड़ि मूढ़ इन कहं अचेत हम जात जलधि के पारा।।

* * *

जाबाली जैमिनि गरग पातंजलि शुकदेव।
रहे हमारेहि अंक में कबहि सबै भुवदेव।।
याही मेरे अंक में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारत-गान सों भारत बदन प्रकास।।

याही मेरे अंक में कपिल सूत दुर्वासि ।
याही मेरे अंक में शाक्य सिंह सन्यास ।।
याही मेरे अंक में मनु भृगु आदिक होय ।
तब तो तिनको करत हो आदर जग सब कोय ।।

*   *   *

कहं गये बिक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर ।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहा नासे करिकै थिर ।।
कहं क्षत्री सब मेरे बिनसि सब गए कितै गिर ।
कहां राज को तौन साज जेहि जानत है चिर ।।

कहं दुर्ग सैन धन बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग ।
उठि अजौ न मेरे बलसगन, रक्षहि अपुनो आर्य मग ।।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

भारत-दुर्दशा

['भारत-दुर्दशा' से]

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई। हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।
ध्रुव सबके पहिले जेहि ईश्वर धनबल दीनो। सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो। सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई। हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

जहं भए शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती। जहं राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती।।
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती। तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती।।
अब जहं देखहु तहं दु:खहि दु:ख दिखाई। हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी। करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी।।
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी। छाई अब आलस कुमति कलह अंधियारी।।
भये अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई। हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

अंगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी। पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।
ताहू पै महंगी काल रोग विस्तारी। दिन-दिन दूनो दुख ईस देत हा हा री।।
सब के ऊपर टिक्कस की आफत हाई। हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

* * *

जागो जागो रे भाई! सोवत निमि बैस गंवाई। जागो-जागो रे भाई।।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो कालराति चलि आई।।१।।
देखि परत नहिं हित अनहित कहु परे बैरि बस जाई।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई।।२।।
अबहूं चेत पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई।
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुंह बाई।।३।।

* * *

भारत के भुजबल जग रच्छित। भारत विद्या लहि जग सिच्छित।।
भारत तेज जगत बिस्तारा। भारत भय कंपत संसारा।।
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए। थर-थर कंपत नृप डर पाए।।
जाके जय की उज्जल गाथा। गावत सब महि मंगल माथा।।

भारत किरिन जगत उजियारा । भारत जीव जिअत संसारा ।।
भारत वेद कथा इतिहासा । भारत वेद प्रथा परकासा ।।
फिनिक मिसिर सीरिय युनाना । भे पंडित लहि भारत दाना ।।
रह्यो रुधिर जब आरज सीसा । ज्वलित अनल समान अवनीसा ।।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं । तबै रह्यो महिमंडल माहीं ।।
कहा करी तकसीर तिहारी । रे विधि रुष्ट याहि की बारी ।।
सबै सुखी जग के नर-नारी । रे विधना भारतहि दुखारी ।।
हाय रोम तू अति बड़भागी । बर्बर ताहि नास्यो जय लागी ।।
तोड़े कीरति थम्भ अनेकन । ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन ।।
मन्दिर-महलनि तोरि गिराये । सबै चिन्ह तब धूरि मिलाये ।।
कछु न बची तुव भूमि निसानी । सो बरु मेरे मन अति मानी ।।
भारत भागन जीतन हारे । थाप्यो पग ता सीस उघारे ।।
तोरयो दुर्गन महल ढहायो । तिनहीं में निज गेह बनायो ।।
ते कलंक सब भारत केरे । ठाढे अजहूं लखो घनेरे ।।
काशी प्राग अयोध्या नगरी । दीन रूप सम ठाढ़ीं सगरी ।।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई । रहीं सबै भुव मुंह मसि लाई ।।
हाय पंचनद हा पानीपत । अजहूं रहे तुम धरनि विराजत ।।
हाय चित्तौर निलज तू भारी । अजहूं खरो भारतहि मंझारी ।।
जा दिन तुव अधिकार नसायो । सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो ।।
रह्यो कलंकन भारत नामा । क्यों रे तू बारानसि धामा ।।
सब तजि के भजिकै दुख भारी । अजहुं बसत करि भुव मुखकारी ।।
अरे अग्रवन तीरथ राजा । तुमहुं बचे अबलौं तजि लाजा ।।
पापिन सरजू नाम धराई । अजहूं बहत अवधतट जाई ।।
तुममें जल नहिं जमुना गंगा । बढ़हु बेग करि तरल तरंगा ।।
धोवहु यह कलंक की रासी । बोरहु किन झट मथुरा कासी ।।
कुस कन्नौज अंग अरु बंगहिं । बोरहु किन निज कठिन तरंगहिं ।।
बोरहु भारत भूमि सबेरे । मिटै करक जिय के तब मेरे ।।
अहो भयानक भ्राता सागर । तुम तरंगनिधि अति बल आगर ।।

बोरे बहु गिरि बन अस्थाना। पै बिसरे भारत हित जाना ।।
बढ़हु न बेगि धाइ क्यों भाई। देहु भरत भुव तुरत डुबाई ।।
घेरि छिपावहु विन्ध्य हिमालय । करहु सकल जल भीतर तुम लय ।।
धोवहु भारत अपजस पंका। मेटहु भारत भूमि कलंका ।।

हाय यही के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे।

जेहि छिन बल भारे हे सबै तेग धारे । तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई ।।
जग सिर पग धारे धावते रोम भारे । विपुल अवनि जीनी पालते राजनीती ।।
जग इन बल कापे देखि के चन्ड दापे । सोइ यह प्रिय मेरे ह्वै रहे आज चेरे ।।
ये कृष्ण बरन जब मधुर तान । करते अमृतोपम वेद गान ।।
तब मोहन सब नर नारि वृन्द । सुनि मधुर बरन सज्जित सुछन्द ।।
जग के सबही जन धारि स्वाद । सुनते इनही को बीन नाद ।।
इनके गुन होतो सबहि जैन । इनही कुल नारद तानसेन ।।
इनही के क्रोध किये परकास । सब कांपत भूमण्डल अकास ।।
इनहीं तक हुंकृति शब्द घोर । गिरि कांपत हे मुनि चारु मोर ।।
जब खेत रहे कर मे कृपान । इनही कह हो जग तृन समान ।।
सुनि कै रनबाजन खेत माहि । इनही कहं हो जिय संक नाहि ।।

याही भव महं होत है, हीरक आम कपास ।
इतही हिमगिरि गंगजल, काव्य गीत परकास ।।
जाबाली जैमिनि गरग, पातंजलि सुगदेव ।
रहे भारतहि अंग मे, कबहि सबै भुवदेव ।।
याही भारत मध्य मे, रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिनके भारत-गान सों, भारत बदन परकास ।।
याही भारत मे रहे, कपिल सूत दुरवास ।
याही भारत में भये, शाक्य सिंह सन्यास ।।
याही भारत में भये, मनु भृगु आदिक होय ।
तब तिनसों जग मे रह्यो, घृना करत नहि कोय ।।
जासु काव्य सो जगत मधि, अब लौ ऊंचो सीस ।
जासु राज बल धर्म की, तृषा करहि अवनीस ।।

सोई व्यास अरु राम के, वंश सबै सन्तान ।
ये मेरे भारत भरे, सोइ गुन रूप समान ।।
सोई वंश रुधिर वही, सोई मन विश्वास ।
वही वासना चित वही, आसय वही विलास ।।
कोटि-कोटि ऋषि पुन्य तन, कोटि-कोटि अति सूर ।
कोटि-कोटि बुध मधुर कवि, मिले यहा की धूर ।।
सोइ भारत की आज यह, भई दुरदसा हाय ।
कहा करै कित जायं नहिं, सूझत कछू उपाय ।।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

महाराष्ट्र भूमि

['वैश्योपकारक' में प्रकाशित]

१

हे, हे, महाराष्ट्र धरा ! यदीया, तेज प्रतापांकित है त्वदीया,
सो, भूमि तेरा यश गा रहा है, तुझे जगी सी, कुछ पा रही है ।

२

तू रिक्तहस्ता, पर तेज भारी, तन्द्रान्विता, किन्तु सुकर्मचारी,
तिरस्कृता हाय न शोकशीला, अनैक्ययुक्ता न तु हीन लीला ।

३

तूने सदा वीर, विरक्त जाए, जिन्हे न कोई जग बीच पाए,
न वीरसू ! केवल प्राण तू ले, संसार को बोध विरक्ति भी दे ।

४

समर्थ माता ! शिवदा ! 'त्वमेव' उद्धारकर्त्री ! सुखदा ! 'त्वमेव'
दे तू हमें मा ! अब शीघ्र मुक्ती, 'का ते स्तुतिः स्तव्य परापरोक्तिः ।'

राधाकृष्ण मिश्र

झुकी कमान

['वैश्योपकारक' में प्रकाशित]

१

आये प्रचण्ड रिपु, शब्द सुना उन्हीं का,
भेजी सभी जगह एक झुकी कमान।
ज्यों युद्ध चिन्ह समझे सब लोग धाये,
त्यों साथ थी कह रही यह व्योमवाणी।

"सुना नहीं क्या रणशंखनाद ?
चलो पके खेत किसान ! छोड़ो,
पक्षी उन्हें खोय, तुम्हें पड़ा क्या ?
भाले भिड़ाओ अब खड्ग खोलो।
हवा इन्हें साफ किया करेगी,
जो शस्त्र, हो लाल न देश छाती।"

स्वाधीन का सुत किसान सशस्त्र दौड़ा,
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी॥

२

"छोड़ो, शिकारी, गिरि को शिकार,
उठा पुरानी तलवार लीजै,
स्वतन्त्र छूटे अब बाघ भालू,
पराक्रमी और शिकार कीजै।
बिना सताये मृग चौकड़ी लें—
लो शस्त्र, हैं शत्रु समीप आये।"

आया सशस्त्र तज के मृगया अधूरी,
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी।

३

"ज्योनार छोड़ो मुख की, रईसो ।
गीतान्त की बाट न वीर ! जोहो,
चाहे घना झाग सुरा दिखावैं
प्रकाश में सुन्दरि नाचती हो ।
प्रासाद छोड़ो, सब छोड़, दौड़ो—
स्वदेश के शत्रु अवश्य मारो ।"
सर्दार ने धनुष ले, तुरही बजाई
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी ।।

४

"राजन् ! पिता की तव वीरता को
कुंजों, वनों में सब गा रहे हैं,
गोपाल बैठे जहं गीत गावें,
या भाट वीणा झनका रहे हैं ।
अफीम छोड़ो, कुलशत्रु आए
नया तुम्हारा यश भाट पावें ।"
बन्दूक ले, नृपकुमार बना सु-नेता,
आगे चली धनुष के संग व्योमवाणी ।।

५

"छोड़ो अधूरा अब यज्ञ ब्रह्मन् !
वेदान्तपारायण को बिसारो,
विदेश ही का बलि वैश्वदेव,
औ तर्पणों में रिपु-रक्त डारो ।
शास्त्रार्थ शस्त्रार्थ गिनो अभी से
चलो दिखाओ 'हम अग्रजन्मा' ।।"

धोती सम्हाल, कुश छोड़, सबाण दौड़े,
आगे गई धनुष के संग व्योमवाणी ।।

६

"माता ! न रोको निज पुत्र आज,
संग्राम का स्वाद उसे चखाओ,
तल्वार लाओ भगिनी ! उठा ला,
उत्साह भाई निज को दिलाओ ।
तू सुन्दरी ! ले प्रिय से बिदाई,
स्वदेश मांगे उनकी सहाई ।"

आगे गई धनुष संयुत व्योमवाणी
है सत्य ही विजय, निश्चय बात जानी ।

"है जन्म भूमि जिनकी जननी समान,
स्वतन्त्रता है प्रिय जिन्हे शुभ स्वर्ग से भी ।
अन्याय की जकड़ती कटु बेड़ियों को
विद्वान् वे कब समीप निवास देंगे ?"

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

आहिताग्निका

['वैश्योपकारक' आश्विन संवत् १९६२]

१

प्रतिज्ञा की तूने अति कठिन, उत्साह-भरिते।
निभाओगी कैसे ? धन-जन-धरा-धान्य-रहिते।
अखण्ड ज्योती जो अब यह जगाई, भगवती।
सदा पालोगी क्या तन-मन उसे दे ? गुणवती।।

२

सहोगी तापें भी, क्षुर-सम धरा पै चल रही,
न घूमैगा माथा, प्रति-पद चढ़ाई बढ़ रही ?
न पीछे भागोगी ? नहिं भय ? मिलैं सर्प पथ में,
डरावेंगे भालू-कुजन-रिपु सिंहादि बन में।।

३

बसन्तों में ठण्डा मलयज चलेगा पवन भी,
खिलैगी गर्मी की सुविमल निशा में वह जुही।
मयूरों की मौजे घन-वलित विद्युद्-वलन में,
दिखावैगी वर्षा दृढ़तर प्रतिज्ञा-दलन में।।

४

जुन्हाई में सारे कमल खिल जावें शरद में,
दुराशा के पाले, हिम शिशिर, खैंचैं विषय में।
कहो देवी ! कैसे दहन कर दोगी मदन का ?
न देखोगी पीछे फिर, वह महा-मोह मन का ?

५

रहैं चाहे कोई विषय-सुख के कीट बन के,
न देखैंगी तू तो पल-भर उन्हें कष्ट सह के।
त्वदीया निन्दा से उदर भर लेंगे बहुत से,
दबाई जीभों से जन तब बड़ाई कर सकें ।।

६

स्वधा, स्वाहा, को तू प्रति समय मे ठीक कहके,
न प्रायश्चित्तीया बन कभि अपभ्रंश कहके ।
कहां घी पावैगी ? अब सुखद गो-वंश न रहा ,
ढकैगी काहे से सरस तनु जो कोमल महा ?

७

मिलैगी रेजी तो, यदि वह नही, वल्कल सही,
कलेजे में वेदी रच यह प्रतिज्ञाग्नि धर ली ।
विलासों की मज्जा हवि अब बनैगी सहज में,
सदा स्वार्थो की तू बलि-पशु करैगी हृदय पैं ।।

८

अहो धन्या ! देवी ! यदि यह प्रतिज्ञा निभ गई ,
अंधेरे को नाघा, अब उदय-लाली लख गई ।
उषा का झण्डा ये सुभग अगुआ है बन गया,
प्रतीची का जाला नयन-पट से है हट गया ।।

९

विदेशी चीजें ही बन हह ! गई जन्म-गुटिका,
स्वदेशी पावैं, वा, अब, न, हम , हा ! हन्त खटका,
गड़ेंगे कांटे भी, नयन, जल की वृष्टि पड़ते,
न ढीली होने दे कमर, दुख देशार्थ सहते ।।

१०

उजाला देवेगी प्रबल हठ की ज्योति तुझको,
घृणा के झोके भी नहि कर सकें मन्द उसको ।
बढ़े ही जाना तू, नहि चरण भी एक हटना,
जमाना ज्योती को विजय-गिरि पै जाय डटना ।।

११

वहां, आत्म-स्वार्थ-प्रवण-मन का होम करना,
विरोधों के आगे, पण सम, निज प्राण धरना ।
यही इच्छा है ? जा, भगवति ! भला हो तव सदा ।
हमारा भी होगा तव चरण में मंगल सदा ।।

चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

राष्ट्रीय गान

[चैत्र, संवत् १९६३]

सुहृद्वर भारत सन्तानों, एक समययुत होय विनीत ।
असीम भारत की सत्ता के, गाओ ध्वनि से यश के गीत ।।

अवनीतल पर अन्य भूमि नहि, देखो भारतभूमि समान ।
सब विदेश, शिरमौर श्रेष्ठ अति, सुख-सम्पत्ति की यह खान ।।

वीर भूमि कर्णाटक, सिन्धु, ब्रह्मदेश, गुर्जर, सौराष्ट्र ।
राम भूमि, मद्रास, पंचनद, वंग, मध्य, मालव, महाराष्ट्र ।।

तरु हिमाद्रि, गिरि, कुञ्ज, सरित, सर, षट् ऋतु नित प्रति कर निवास।
फलवति, पुष्पवति, पुण्यवति, स्रोतस्वति, वसुमति है ये सब सुख रास ।।

हाय आज उन्नत भारत को कैसी ये दुर्दशा महान ।
विद्या, बुद्धि, कला, कौशल, बिन, दिखा रहा है सब सुनसान ॥
परम पुरातन शिल्प आदि के टूट-फाट सब गये निशान ।
जीर्ण-शीर्ण जो बचे शेष हैं सो धरणी धंस रहे, सुजान ॥
आये, हिन्दु, सिख, मुसलमान, ब्राह्मी, जैनी, सत बुद्धि बुद्ध ।
तथा पारसी, यहूदि, ख्रिश्चियन, पूर्व देश के वासी शुद्ध ॥
धरो परस्पर मित्र भावना, देशबन्धु सब करके सम्प ।
एक रक्त धारी भ्राताओ, उपजाओ अरि मन में कम्प ॥
शूरवीर भारत भू पुत्रो, शौर्यपूर्ण करके निज अंग ।
जय घोषण से नभ गर्जाओ, बदलाओ भारत का रंग ॥
तरुण तनय भारत के जागो, धरो न भय मन में लवलेश ।
स्वदेश सेवा में तत्पर हो, काटो भारत का सब क्लेश ॥
समय वह भारतवासी जन, तन, मन, धन, से हो अनुरक्त ।
करो कला कौशल की उन्नति, चमकाओ भारत की भक्त ॥
कांग्रेस में यत्नवान हो, करो स्वदेशी वस्तु प्रचार ।
शिल्पालय, कालेज खोलकर, देशी शिल्प का करो सुधार ॥
विश्व कर्म के विशद वंशधर, शिल्पकार, विज्ञानि सुजान ।
नम्र विनय यह सुनो हमारी, करो सतत उद्योग महान ॥
उद्योगी नरसिंह निकट नित, बसे लक्ष्मी दासि समान ।
निःस्वारथ उद्योग व्यर्थ नहिं जाता, है यह नीति निदान ॥
जहां पुरुष कर्त्तव्य-परायण, विजयी होता है वह देश ।
पर उन्नति होवेगी तब ही, जब होवै सम्पत्ति विशेष ॥
सुमती, सम्पत्ति औ जय, लक्ष्मी, नितप्रति रही हैं सब साथ ।
यदि कुमत्य की हुई प्रबलता, तो समझो निश्चय निष्पात ॥

चम्पालाल जौहरी 'सुधाकर'

भारत माता और योरोप रमणी का परस्पर आलाप

[बैशाख, १९६३ संवत् वि०]

(एक स्त्री अपने अनेक बालकों के साथ दीवानी-सी घूमती हुई दिखायी पड़ती है,। इसे देखकर, भारतभूमि को देखकर, एक दयालु की दयामयी शंका)

रोला

शुभ गुणयुत सुकुमारि दया लोचनि विचारिणि ।
कौन अहै यह तिया वियोगिनि मोहन कारिणि ।।
चौकति चलति विहाति निरेखनि निज प्रतिपालक ।
व्यथित हिया घबराति रुअति लखि दुखिअन बालक ।।

कौन हेतु सब बाल रुअन याके अति बेकल ।
दुसह दुःख बहु शोक रोग ते पीड़ित दुरबल ।।
कउ रोगी कउ दुखी कऊ बिनु अन्न बिआकुल ।
अन्यायिन ते दुखी कऊ नृप नीति समाकुल ।।

अन्न-वस्त्र ते हीन कला चतुरता भुलानी ।
प्रिय कउ रतन गँवाइ मनो यह फिरति देवानी ।।
अहै यहै के जाहि कहत सब भारतमाता ।
जाकह गुण सम्पन्न बृटिश जाहिर परित्राता ।।

भरत नृपति इहि बहुत लाड़ते पालि बढ़ायो ।
ऋषिगन शुभ गुन धर्म दया दृढ़ रीति सिखायो ।।
पुरु दधीच हरिचन्द्र आदित्य गन की प्यारी ।
क्यों कह फिरति बेहाल विकल तनु लहति बेचारी ।।

यह तो सुख सम्पत्ति भरी बहु दिन ते आवति ।
अब क्यों रोअति सती बिलखि बालक समुहावति ।।
जदपि कऊ सुत याहि वसन खैंचत पुनि भारत ।
तऊ न तजति पिआर प्रेम जनु हियधरि चारत ।।

कौ कह चूमति गोद बहति कोऊ कह प्यारति ।
कौ कह देश विलोकि विलखि अँसुअन दृग ढारति ।।
यही अहैं हम जानि सुवरि भारत की माता ।
चमकति ग्रंथन माहिं सुभग जाके अहिवाता ।।

दोहा

इहि अवसर पै आइकै इक तिय अति इतरात ।
पूछन लगी विनोदयुत भरत भूमि की बात ।।

योरोप रमणी—

क्यों री तू कित जाइ कौन तुम राअति काहै ?
कृश तनु बाल निहार शोक-सागर अवगाहै ।।

भारतमाता—

भरत नृपति प्रतिपालि हमहिं पुन बहु सुख दीनो ।
गौर चन्द्र दौ वंश धरन ते रहि रसभीनो ।।
पुनि विशेन उज्जैन राज चोहान हमारे ।
हम कहां अति सुख दीन बहुत उन हमहिं पिआरे ।।

दोहा

भरत भूमि की बात सुनि, यूरुप रमणी चौंकि ।
ऐंठति अति इतराति पुनि, बोली सम्मुख तौंकि ।।

(अंग्रेजी धुन मे गाती हुई)

वीर नैपोलियन हेम्डन् नेलसन् ।
अल्फ्रेड दि ग्रेट अलेग्जेण्डर दि ग्रेट ।।
जौन हाउवर्ट क्रामवेल् हेमडन् ।
फ्रेडरिक् दि ग्रेड सो पीटर दि ग्रेट ।।
मिजनी सिडनी राब्बर्ट ब्रुस ।
लूयर जुलियस सीजर् मार्टिन् ।।

अस रणजीत जहां गुण गाहक । देश हेतु निज तन को दाहक ।
कर बल छल जित राजत नीके । कलाचन्द जह जग रजनी के ।।

गूढ़ नीति जितकी जग जाहिर। जितके चार पादरी बाहिर।।
जहँ स्वारथ परतच्छ विराजै। जहा धर्म देशोन्नति काजै।।
दया दरिद जित अंपन न पावै। स्वेच्छाचारि तिया जित भावै।।
मान पाच मिलि जित करि काजा। राजकाज जहँ गँठत समाजा।।
पुरुष तिया जित के सब लोगू। मिलत सबहि सब से सुख भोगू।।
जित के लोग सदा सुख पावै। बन्धन कऊ नहीं लखि आवै।।

दोहा

खेतहु जहा तेमंजिला, कहा कथा गृह केरि।
ग्यारह मंजिल लौ जहां, गृह सुन्दर चहु फेरि।।

चौपाई

विघ एक जिहि जगह सुहावै। सो उज्वल सुख लौड कहावै।।
वानिज ही परधान जहां के। सोख होत जित नित परजाके।।

(भारतभूमि का ओर दिखा कर)

जिनके राजतु सारहु स्वामी। जो सब देशन मे अभिरामी।।
तब क्यो सो सम्मुख तू ठाढ़ो। राजन अधिक प्रसननि बाढ़ी।।
तुमरे कोष माहि कउ राजा। कौन सुकीरति के कउ काजा।।
सौ बखानु उन के गुन नीके। सुखे सरस मधुर वा फीके।।

दोहा

मुनि बोलो बिल बात अति, भरतभूमि मृठि बैन।
रहे अनूपम भूजित अब जो रहु सुख दैन।।

रोला

जलधि जाहि चहुं फेरि उछलि जित परिख बनावै।
विन्ध्य मेरु गिरि आदि किला सो चौकस भावै।।
मधुर अमित बहु अन्न कन्द फल ते अति सोहित।
अतुल औषधी जड़ी जड़िन जेते सब मोहित।।

माधव मिश्र

भारत स्तव

['इन्दु' मासिक पत्र अप्रैल, १९१२]

१

बसते वसुधा पर देश कई ।
जिनकी सुखमा सविशेष नई ।।
पर भारत की गुरुता इतनी ।
इस भूतल पे न कहीं जितनी ।।

२

गुण गुम्फित हैं इसमें इतने ।
पृथिवी पर हैं न कहीं जितने ।।
किस की इतनी महिमा वर है ।
इसपै सब विश्व निछावर है ।।

३

सुख मूल उशीर सुगन्धि सनी ।
क्षिति शोभित काञ्चनरेणु घना ।।
शुचि सौरभपूर्ण सुवर्ण जहां ।
वसुधा पर है वह देश कहां ।।

४

उपजें सब अन्न सदा जिसमें ।
अचला अति विस्तृत है इसमे ।।
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहां ।
समझो सब की भवभूमि यहां ।।

५

प्रिय दृश्य अपार निहार नये ।
छवि वर्णन में कवि हार गये ।।
उपमा इसकी न कहीं पर है ।
धरणीधर ईश बराबर है ।।

६

जल-वायु महा हितकारक है ।
रुजहारक स्वास्थ्य-प्रसारक है ।।
युनिमन्त दिगन्त मनोरम है ।
क्रम षट्ऋतु का अति उत्तम है ।।

७

सुखदायक ऊपर श्याम घटा ।
दुखहारक भूपर शस्य छटा ।।
दिन में रवि लोक प्रकाशक है ।
निशि में शशि ताप-विनाशक है ।।

८

छवियुक्त कहीं पर खेत हरे ।
बन बाग कहीं फल-फूल भरे ।।
गिरि उच्च कहीं मन मोह रहे ।
सब ओर जलाशय सोह रहे ।।

९

रत्नाकर को रसना पहने ।
बहु पुष्प-समूह बने गहने ।।
परिधान किये तृण चीर हरा ।
अति सुन्दर यह है दिव्य धरा ।।

१०

बहु चम्पक कुन्द कदम्ब बड़े ।
    बकुलादि अनन्त अशोक खड़े ।।
कितने न इसे वट वृक्ष मिले ।
    अति चित्र विचित्र प्रसून खिले ।।

११

मृदु बेर मुखप्रिय जम्बु फले ।
    कदली महतूत अनार भले ।।
फलराज रसाल समान कहीं ।
    फल और मनोहर एक नहीं ।।

१२

कृषि केसर की भरपूर यहां ।
    मृग गन्ध कुसुम्भ कपूर यहां ।।
मधु का समझो बस कोष इसे ।
    रस हैं इतने उपलब्ध किसे ?

१३

अमृतोपम अद्भुत शक्तिमयी ।
    जिनकी सुगुण श्रुति नित्य नयी ।।
इसमें बहु औषधियां खिलतीं ।
    जल में थल में तल में मिलतीं ।।

१४

कृषि में इसने जग जीत लिया ।
    किसने इस-सा व्यवसाय किया ?
सन रेशम ऊन कपास कहो ।
    उपजा इतना किस ठौर कहो ?

१५

अवनी उर में बहु रत्न भरे।
कनकादिक धातु समूह-धरे॥
वह कौन पदार्थ मनोरम है?
जिसका न यहां पर उद्गम है॥

१६

कवि पण्डित वीर उदार महा।
प्रकटे मुनि वीर अपार यहां॥
लख के जिनकी गति के मग को।
गुरु ज्ञान सदा मिलता जग को॥

१७

बहु भांति बसे पुर ग्राम घने।
अब भी नभचुम्बक धाम बने॥
सब यद्यपि जीर्ण विशीर्ण पड़े।
पर पूर्वदशास्मृतिचिह्न खड़े॥

१८

अब भी वन में मिल के चरते।
बहु गोगण हैं मन को हरते॥
इन सा उपकारक जीव नहीं।
पय-तुल्य न पेय पदार्थ कहीं॥

१९

मदमत्त कहीं गज झूम रहे।
मुदमान कहीं मृग घूम रहे॥
शुक चातक कोकिल बोल रहे।
कर नित्य शिखीगण डोल रहे॥

२०

शतपत्र कहीं पर फूल रहे।
मधुमुग्ध मधुव्रत भूल रहे ।।
कलहंस कहीं रव है करते।
जलजीव प्रमोद भरे परते ।।

२१

शुचि शीतल मन्द सुगंध सनी।
फिरती पवन प्रिय नारि बनी ।।
हरती सब का दुख सेवन में।
भरती सुख है मन में तन में ।।

२२

जगतीतल में वह देश कहां ?
निकले गिरिगन्ध विशेष जहां ।।
इसमें मलयाचल शोभन है।
जिसमें घन चन्दन का वन है ।।

२३

सिर है गिरिराज ग्रहो इसका।
इस भांति महत्व कहो किसका ।।
तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा।
विभवालय है यह किन्तु बड़ा ।।

२४

वर विष्णुपदी बहती इसमें।
रवि को तनया रहती इसमें ।।
अघनाशक तीर्थ अनेक यहां।
मन को मिलती चिरशान्ति जहां ।।

२५

क्षितिमण्डल था जब अज्ञ सभी ।
　　　यह था अति उन्नत सभ्य तभी ।।
वह देश समुन्नत जो अब है ।
　　　शिशु शिष्य इसी गुरु के सब हैं ।।

२६

शुचि शौर्यकथा इतनी किसकी?
　　　जगविश्रुत है जितनी इसकी ।।
अमरों तक का यह मित्र रहा ।
　　　अनिदिव्य पवित्र चरित्र रहा ।।

२७

ध्रुव धर्ममयी इसकी क्षमता ।
　　　रखती न कहीं अपनी ममता ।।
अतएव इसे भजिये भजिये ।
　　　जननी पर प्रेम नहीं तजिये ।।

अज्ञात

'वन्दे मातरम्' का पद्यात्मक छाया अनुवाद

['हिन्दी प्रदीप'—जनवरी, १९०६]

बन्दौं मात तुम्हें !
स्वच्छ मधुर जल भरे जलाशय, हरियाली लहलहात ।
चांद उजास छिटिक चहुं ओरा, कुसुमित कानन अधिक सोहात ।। बन्दौं मात तुम्हें !

मलयज रज मकरन्द बहाये, उपवन वीथिन बहत बयार ।
सुखदाता वरदा अम्बे, करण रसायन शब्द तुम्हार ।। बन्दौं मात तुम्हें !

तीस करोर मनुज मुनि कलकल, दुखित दशा मंह तिनहि निहार ।
गहि करबाल दुहूंकर माता, करन चही तिन कर उद्धार ।। बन्दौं मात तुम्हे !

रिपु-दल-घालक तव विशाल भुज, कहत तोहि कत सब जग अबला!
संपद सुख जब तुव अधीन तब, क्यों न कहे तुहि प्रबला ।। बन्दौ मात तुम्हे !

निगम अगम विद्या सब हमरी, आग्ज धरम हमारो ।
विभव वित्त धन धान्य सबहि मंह, निज महिमा विस्तारो ।। बन्दौ मात तुम्हे !

देहहि प्रान, हृदय महं भक्ती, बाहु दुहुन महं शक्ती ।
सब में व्याप रही हो जननी, अद्भुत तुव करतूती ।। बन्दौं मात तुम्हे !

दुर्गा सब दुर्गति की हरनी, दशभुज आयुध धरनी ।
घर-घर प्रतिमा लसत तुम्हारी, तब क्यों न होहु मन हरनी ।। बन्दौ मात तुम्हे !

कमला कमल बिहारिनि माता, बिमल अतुल तुव भासा ।
सुस्मित गात सरल चित ह्वै के, करहु कृपा निज दासा ।। बन्दौ मात तुम्हे !

सुफल मनोरथ ते जन होवहि, जे बिनवै तुहि धरनी ।
पावन भरन सबहि तव करगत, किमि चुकवौ तुव करनी ।। बन्दौ मात तुम्हे !

बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय (मूल-लेखक)

स्वदेशी कजली

['हिन्दी प्रदीप'—अगस्त, १६०६]

अब जनि बिलम लगावहु कछु तुम शुभ अवसर यह आयो रामा ।
हरि हरि घर घर करहु स्वदेशी को प्रचारा रे हरी (टेक) ।। १ ।।

काहे निपट निकम्मो वस्तुन लेवन मां चित्त लायो रामा ।
हरि हरि दै विदेश, धन जनि फूको घर मारा रे हरी ।। २ ।।

हा ! चटकीली वस्तु विदेशी भारत भर है छायो रामा ।
हरि हरि सब भारत वस्तुन गारत करि डारा रे हरी ।। ३ ।।

भये विदेश विलासी क्यों सब का तुम को भरमायो रामा ?
हरि हरि करत घृणा निज देश, विदेश पियारा रे हरी ।। ४।।

जेहि के बल जग सभ्य भयो सब जेहि जग ज्ञान सिखाया रामा ।
हरि हरि नाम धाम सो डूबो सबहि हमारा रे हरी ।। ५ ।।

ताली दै दै हंसत हमैं, सब नीच असभ्य बनाया रामा ।
हरि हरि तौहूं धिक ! तुम करत विदेश पियारा रे हरी ।। ६ ।।

जानहु का नहिं पुन्य भूमि भारत हरि अहै बनायो रामा ।
हरि हरि होत जहां तृण शस्य अनाज अपारा रे हरी ।। ७ ।।

जल थल सरिता सर उपवन वन मुनि मन लेत लुभायो रामा ।
हरि हरि प्रकृति देवि को छवि है जहं सुख द्वारा रे हरी ।। ८ ।।

सुख सम्पति दाता भारत की सेवा ध्यान लगाओ रामा ।
हरि हरि धन जन मन अर्पण सब करहु तुम्हारा रे हरी ।। ६ ।।

स्वास वायु जल लौं जीवन महं "जय श्री भारत" गाओ रामा ।
हरि हरि देवहु तुरत विदेशी वस्तुन जारी रे हरी ।। १० ।।

"खाओ पहिनौ ओढ़ौ, देओ, लेओ जो मन भायो रामा" ।
हरि हरि सो सब होय स्वदेशी यदि प्राण धारा रे हरी ।। ११ ।।

पांडेय लोचनप्रसाद (बालपुर)

श्रीयुत लाजपतराय

['हिन्दी प्रदीप'—जुलाई, १६०७]

धन्य आर्य कुल वीर लाजपत नर वर श्रीयुत ।
धन्य बन्धु हित करन धन्य भारत सुयोग्य सुत ।।

धन्य दया के पुंज बुद्धि विद्या के सागर ।
सहनशील गम्भीर धन्य पंजाब दिवाकर ।।

मृदुभाषी निष्कपट साधु भारत हितकारी ।
सदाचार पटु श्रमी देश स्वातन्त्र्य भिखारी ।।

नीतिविज्ञ वाचाल न्याय के रूप गुणागर ।
अति उदार दृढ़ वीर हृदय निश्छल करुणाकर ।।

सरस भाव परिपूर्ण जासु केहरि सम बानी ।
राजनीति उपदेश अनेकन रस में सानी ।।

दुखी प्रजायुत मातृभूमि की दशा सुधारक ।
शासन के अन्याय जनित संताप निवारक ।।

भारत जन सर्वस्व सुमन्त्री बृटिश राज के ।
स्वहृदय पोषक बायकाट इच्छुक स्वराज के ।।

तन मन धन से रहत सदा जो देश कार्यरत ।
वीर भूमि को वीर पुत्र सोइ वीर लाजपत ।।

देशबन्धु हित छांड़ि आपनो यश चिरसंचित ।
तज्यो पिता प्रिय पुत्र मित्र बन्धुन स्वदेश हित ।।

प्यारे तेरो नाम सुयश अतिशय प्रिय पावन ।
पराधीनता शोक व्यथा संताप नसावन ।।

भारत के इतिहास बीच तेरो गुण विस्तृत।
स्वर्णाक्षर मे आर्य! होयगो निश्चय मुद्रित।।

प्यारे तेरे विमल कीर्ति की सरस कहानी।
पढ़ि पढि अति हिय मोद लहैंगे बुध भट ज्ञानी।।

कविजन आदर सहित तुम्हारो गान करगे।
ईर्षी तुव यश सुनत दात पर जीभ धरैंगे।।

करि तेरो अनुकरण देश के जेते बालक।
अवश होयंगे मातृभूमि के दृढ़ प्रतिपालक।।

बुधि विद्या कछु नाहि कहां लौं तुव गुण गाऊं।
तुव छाया तर बैठ सदा तुव कुशल मनाऊं।।

माधव प्रसाद शुक्ल—प्रयाग

वीर बन्धु

['हिन्दी प्रदीप'-- अक्तूबर, १९०७]

"वीर बन्धु" हैं कौन देश में कौन बुद्धि बल शाली हैं।
यदि विचार देखो भाई तो, आर्य पुरुष बंगाली हैं।।

कौन स्वदेशी सेवक सच्चे कौन सुदृढ़ प्रण-पालक हैं।
बुध जनों यह कहना होगा, बंग देश के बालक हैं।।

देशभक्त हैं यही लोग अरु, इनका यश जग छायेगा।
अल्प दिनों मे इनके ही, कर्तब का फल दिखलायेगा।।

अधिक लोग इस 'भारत' में तो, बात मिलाने वाले हैं।
देशभक्ति की मधु पीकर, कुछ यहां हुए मतवाले हैं।।

आत्मस्वार्थ का त्याग यही जन कैसा ठीक दिखाते हैं।
सरल चित्त से देखो तो ये मानों हमें सिखाते हैं।।

जो सुकुमार बालकों पर भी निर्दय दया न खाते हैं।
इन दुष्कर्मों से स्वजाति का परिचय जो दिखलाते हैं।।

ऐसे प्रबल हाकिमों का भी सह लेते हैं बज्र कुठार।
हंसते हुए चले जाते हैं आज देश हित कारागार।।

प्यारे महाराष्ट्र भाई एक इनके तुम्हीं सहायक हो।
आर्य पुरुष साहसी हृदय अरु भारत के सुखदायक हो।।

बन्धु गणो! हम अधिक बंदना आज तुम्हारी करते हैं।
तुम लोगों के हो कर्तब को देख धैर्य हिय धरते हैं।।

आर्य गणो! इसमें जगदीश्वर तुम लोगों की करे सहाय।
बढ़े तुम्हारी शक्ति अधिकतर भारत में धन धर्म दिखाय।।

हा ! पंजाब देशबासी गण तुम कुछ नहीं लजाते हो।
देशभक्त जन सहे दुःख तुम राजभक्ति दिखलाते हो ।।

थोड़े दिन इस जग में रहना जो कुछ भी कर जाओगे।
पुनर्जन्म लेकर निश्चय ही उसका प्रतिफल पाओगे ।।

युक्त प्रांत वालों को देखो कैसे सुख से सोते है ।।
जरा ध्यान भी नही देश का व्यर्थ जिन्दगी खोते है ।।

टमको-मसको देखो-भालो कुछ तो मुह मे बोलोगे।
अच्छा भला यही बतला दो कब तक आंखें खोलोगे ।।

माधव शुक्ल

दासता

['हिन्दी प्रदीप'—अक्तूबर. १९०७]

भूमि के सम्पूर्ण देशों में कभी जो एक था ।।
हा ! जो 'भारत' घर गुलामों का कहा जाने लगा ।।

थी जगद्विख्यात जिसकी वीरता, कारीगरी ।।
धर्म-तत्परता, सुजनता, एकता, सौदागरी ।।

और विद्या का भरा आगार था जिस देश में ।।
हा ! वही सहता अनादर 'दासता' के भेख में ।।

वीरवर जयमल्ल, पुत्त, प्रताप, पृथ्वीराज से ।।
मान गौरव के बढ़ावनहार थे जिस देश के ।।

प्राण रहते जिन्होंने छोड़ी नहीं 'स्वाधीनता' ।।
हुए रिपु भी मुग्ध जिनकी देख बल शालीनता ।।

'दासता' सुनते ही जिनके क्रोध की सीमा न थी ।।
आज उनके वंशधर हा ! दास बन बैठे सभी ।।

इस तरह कितने बली इस भूमि ने पैदा किये ।।
मातहित जिन प्राण जनहित सुयश तज सुरपद लिये ।।

हाय ! भारत आज यह तेरी दशा क्या हो गयी ।।
भूमि में विख्यात महिमा है कहां सब खो गयी ।।

देश के प्यारे जनो अब भी पड़े क्यों सो रहे ।।
'दासता' को मानकर सुख व्यर्थ दिन क्यों खो रहे ।।

भाइयो यह देश गारत है इसी का ही किया ।।
देश से 'स्वाधीनता' को है इसी ने हर लिया ।।

है इसी ने ही नसाया धर्म हिन्दुस्तान का ।।
कर दिया हमको निरा ज्यों पूतला बेजान का ।।

बोलने लिखने तलक की अब मनाही हो गयी ।।
देश की सत्कीर्ति सब इसकी बदौलत धो गयी ।।

है किया चोपट इसी ने सब हमारे कारोबार ।।
अब मंगाती भीख हमसे है फिराकर द्वार-द्वार ।।

लोभ दिखला कर फंसाया देश को है किस तरह ।।
जाल मे स्वच्छन्द पक्षी आन फंसता जिस तरह ।।

हे विभो ! भारत को पहले की तरह भरपूर कर ।।
शीघ्र ही सर्वस्वहारिणि 'दासता' को दूर कर ।।

माधव शुक्ल

कष्ट

['हिन्दी प्रदीप'—नवम्बर, १९०७]

१

रे कष्ट ! तोहि नहिं और ठौर,
भारत गर लागत दौर दौर।
यह भूमि भई तोहिं अस पियारि,
रम रह्यो सकल सुध-बुध बिसारि ।।

२

पहले छलयुत दृढ़ प्रीत कीन्ह,
पुनि धीरे धीरे स्वबश कीन्ह।
अब घर-घर डारिन पात-पात,
तजि, अंत बसब तोहि नहिं सोहात ।।

३

बानर जिमि गहि शावक बिलारि,
अति प्रेम करत निज हिय बिचारि।
नहिं छाड़त जबलौं मर न जात,
सोई लच्छन तुमरो दिखात ।।

४

जब से निज दल युत बसे आय,
श्री नष्ट भई अति बढ्यो ताप।
जन प्रेम एकता गयी दूर,
निस-दिन रोवत यह हिय बिसूर ।।

५

परतहिं तुम्हरो पग देस हाय,
    बन बैठो भारत शुष्क काय।
धन, अन्न, पुरुष, विद्या, विहीन,
    ह्वै गयो दीन अरु पराधीन॥

६

कहुं प्लेगरूप कहुं गरु अकाल,
    कहु राजनीति में पाव डाल।
यहि बिधि कलपावत आर्य बंश,
    रे निठुर तोहि नहिं दया अंश॥

७

हम बिनवत तोहिसन बार-बार,
    जिन कर दुखियन ऊपर प्रहार।
ह्वै रहे बिपति फसि जे अधीर,
    का लाभ तिनहिं पुनि दिये पीर॥

८

मम भारत को सीधो सुभाव,
    अब याको तजि कहु अंत जाव।
यह प्रीति न तुव संग करन जोग,
    तासे चाहत अब तव वियोग॥

९

इंगलैण्ड जर्मनी आदि देश,
    तिनमें न करत कस तुम प्रवेश।
याही के हित का जनम तोर,
    ह्वै गयो कुटिल कुत्सित कठोर॥

१०

बहु बिनती कर-कर गये हार,
तजि भारत गवनहु सिन्धु पार।
यहि में भल तुमरो अरु हमार,
ननु अवस बढ़ैगो हिय विकार।।

११

बस, अब कहब हम एक बात,
तुमरी करतब नहिं सह्यो जात।
अबहूं अपने जिय समुझ लेहु,
कहुं जाहु, आपनी राह लेहु।।

माधव शुक्ल—प्रयाग

भारत माता

[राष्ट्रीय गीत]

जय जय भारत माता!
तेरा बाहर भी घर-जैसा रहा प्यार ही पाता ।।
ऊँचा हिया हिमालय तेरा,
उसमें कितना दरद भरा।
फिर भी आग दबा कर अपनी,
रखता है वह हमें हरा।
सौ सोतों से फूट-फूटकर पानी टूटा आता ।।
जय जय भारत माता!
कमल खिले तेरे पानी में,
धरती पर हैं आम फले।
उस धानी आंचल में आहा,
कितने देश - विदेश पले।
भाई-भाई लड़े भले ही, टूट सका क्या नाता ।।
जय जय भारत माता!
तेरा लाल दिशा में हो मां,
चन्द्र-सूर्य चिरकाल उगे।
तेरे आंगन में मोती हों,
हिल-मिल तेरे हंस चुगें।
सुख बढ़ जाता, दुख घट जाता, जब वह है बँट जाता ।।
जय जय भारत माता!
तेरे प्यारे बच्चे हम सब,
बन्धन में बहु बार पड़े।
किन्तु मुक्ति के लिए यहां हम,
कहां न जूझे, कब न लड़े।
मरण शान्ति का दाता है तो जीवन क्रान्ति-विधाता ।।
जय जय भारत माता!

मैथिलीशरण गुप्त

भारत माता

[राष्ट्रीय गीत]

माता सी प्रिय भारत माता !

तुल सकता इसकी तुलना में,
कैसे और किसी का नाता ?

जन्म दिया निज तनु-तत्त्वों से ,
पालन किया सकल सत्त्रों से ,
लिया हमें आजन्म अंक में ,
विशद वेद-वाणी की दाता ।
माता सी प्रिय भारत माता !

अग्रज अनुज अतुल उपजाये ,
सती सुता, सज्जन सुत पाये ,
दिग्विजयी विज्ञान - विशारद ,
विश्रुत ब्रह्मज्ञान के ज्ञाता ।
माता सी प्रिय भारत माता !

क्या ममता इसकी ममता को ।
अमित कथा इसकी क्षमता की ।
भव्य भावना भरित विभूषित ,
विभव विभूति अभय भय-त्राता ।
माता सी प्रिय भारत माता !

वंचित हैं इसके प्रसाद से ,
तज सच्ची सेवा, प्रमाद से,
कर असहाय हाय ! जननी को ,
जन-जन कौन नहीं दुख पाता ।
माता सी प्रिय भारत माता !

"एक राष्ट्रीय आत्मा"

वह देश कौन सा है ?

वह देश कौन-सा है ?

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग-सा जहां है, वह देश कौन-सा है ?

जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है ?

नदियां जहां सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है ?

जिसके बड़े रसीले फल, कन्द, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन-सा है ?

जिसमें सुगन्ध वाले, सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन-रात हँस रहे हैं वह देश कौन-सा है ?

मैदान, गिरि, वनों में हरियालियां लहकतीं।
आनन्दमय जहां है, वह देश कौन-सा है ?

जिसकी अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि, वह देश कौन-सा है ?

सबसे प्रथम जगत् में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा, वह देश कौन-सा है ?

पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया —
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन-सा है ?

जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजलि, वह देश कौन-सा है ?

छोड़ा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम थे जहां पर, वह देश कौन-सा है?

निःस्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहां थे।
लक्ष्मण - भरत सरीखे, वह देश कौन-सा है?

देवी पतिव्रता श्री सीता जहा हुई थीं।
माता पिता जगत् का, वह देश कौन-सा है?

आदर्श नर जहां पर थे बाल ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन-सा है?

विद्वान, वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के।
श्रीकृष्ण थे जहां पर, वह देश कौन-सा है?

विजयी बली जहां के बेजोड़ सूरमा थे।
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन-सा है?

जिसमें दधीचि दानी हरिश्चन्द्र, कर्ण-से थे।
सब लोक का हितैषी, वह देश कौन-सा है?

वाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान् कवि थे।
श्री कालिदास वाला, वह देश कौन-सा है?

निष्पक्ष न्यायकारी जन जो, पढ़े-लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौन-सा है?

है कोटि-कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा, वह देश कौन-सा है?

रामनरेश त्रिपाठी

झंडा वन्दना

एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश।
इस झण्डे के नीचे निश्चित एक अमिट उद्देश्य।।

हमारा एक अमिट उद्देश्य।

देखा जागृति के प्रभात में एक स्वतन्त्र प्रकाश,
फैला है सब ओर एक-सा एक अतुल उल्लास।
कोटि-कोटि कंठों में कूजित एक विजय-विश्वास,
मुक्त पवन में उड़ उठने की एक अमर अभिलाष।
सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं वैर-विद्वेष,
एक हमारा ऊंचा झण्डा, एक हमारा देश।।

कितने वीरों ने कर कर के प्राणों का बलिदान,
मरते-मरते भी गाया है इस झण्डे का गान।
रक्खेंगे ऊंचे उठ हम भी अक्षय इसकी आन,
चक्खेंगे इसकी छाया में रस-विष एक समान।
एक हमारी सुख-सुविधा है, एक हमारा क्लेश,
एक हमारा ऊंचा झण्डा, एक हमारा देश।।

मातृभूमि की मानवता का जागृत जयजयकार,
फहर उठे ऊँचे से ऊँचा यह अविरोध, उदार।
साहस, अभय और पौरुष का यह सजीव संचार,
लहर उठे जन-जन के मन में सत्य अहिंसा प्यार।
अगणित धाराओं का संगम मिलन-तीर्थ-सन्देश,
एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश।।

सुनें सब—एक हमारा देश।

सियारामशरण गुप्त

जय राष्ट्रीय निशान

जय राष्ट्रीय निशान,
जय राष्ट्रीय निशान।
जय राष्ट्रीय निशान।।
लहर-लहर तू मलय पवन में,
फहर-फहर तू नील गगन में,
छहर-छहर जग के आंगन में,
सबसे उच्च महान।
सबसे उच्च महान।
जय राष्ट्रीय निशान।।
बढ़े सूर-वीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली।
बूढ़े और जवान।
बूढ़े और जवान।
जय राष्ट्रीय निशान।।
मन में दीन-दुखी की ममता।
हममें हो मरने की क्षमता।
मानव-मानव में हो समता,
धनी गरीब समान,
गूंजे नभ में तान।
जय राष्ट्रीय निशान।।
तेरा मे दण्ड हो कर में,
स्वतन्त्रता के महासमर में।
वज्रशक्ति बन व्यापे उर में।।
दे दें जीवन-प्राण,
दे दें जीवन-प्राण।
जय राष्ट्रीय निशान।।

सोहनलाल द्विवेदी

क़ौमी गीत

दावा है हर आन हमारा
सारा हिन्दुस्तान हमारा ।।
जंगल और गुल्ज़ार हमारे,
दरिया और कुहसार हमारे ।
कुएं और बाजार हमारे,
फूल हमारे, खार हमारे ।
हर घर हर मैदान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा ।।
गो नहीं इसमें फौजी कुव्वत,
फिर भी बहुत है दिल में हिम्मत ।
और हमारे साथ है कुदरत,
अब कोई ताकत कोई हुकूमत ।
रोक तो दे तूफान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा ।।
हमसे भारत की रौनक है,
आजादी दिन रात सबक़ है ।
अपनी धनक है अपनी शफ़क़ है,
हर जर्रे पर अपना हक़ है ।
खेत अपने दहकान हमारा ।।
हिन्द का मालिक हर हिन्दी हो,
सिर्फ़ यहा एक क़ौम बसी हो ।
बार न पाये खवाह कोई हो,
चाहे वह खुद अपनी खुदी हो ।
देख जरा अरमान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा ।।

साग़र निज़ामी

एकता गीत

मेरी जां न रहे मेरा सर न रहे,
सामां न रहे न ये साज रहे
फ़क़त हिन्द मेरा आज़ाद रहे
मेरी माता के सर पर ताज रहे

सिख, हिन्दू, मुसलमां एक रहें,
भाई-भाई सा रस्म रिवाज रहे
गुरु-ग्रन्थ कुरान-पुरान रहें,
मेरी पूजा रहे औ नमाज़ रहे।

मेरी टूटी मड़ैया में राज रहे,
कोई ग़ैर न दस्तन्दाज़ रहे।
मेरी बीन के तार मिले हों सभी,
इक भीनी मधुर आवाज़ रहे।
ये किसान मेरे खुशहाल रहें,
पूरा हो फ़सल सुख-साज रहे।

मेरे बच्चे वतन पै निसार रहें,
मेरी मा बहिनों की लाज रहे।
मेरी गायें रहें, मेरे बैल रहें,
घर घर में भरा सब नाज रहे।

घी-दूध की नदियां बहती रहें,
हरसू आनन्द स्वराज रहे।
माधो की है चाह खुदा की क़सम,
मेरे बादे वफ़ात ये बाज रहे।
खादी का कफन हो मुझ पै पड़ा,
'बन्दे मातरम्' अलफ़ाज़ रहे।

माधव शुक्ल

वन्दना के इन स्वरों में

बंदना के इन स्वरों मे,
एक स्वर मेरा मिला लो।
    बंदिनी मां को न भूलो।
    राग में जब मत्त झूलो।।
अर्चना के रत्न कण मे,
एक कण मेरा मिला लो।
    जब हृदय का तार बोले।
    शृंखला के बन्द खोले।।
हों जहा बलि शीश अगणित,
एक सिर मेरा मिला लो।

सोहनलाल द्विवेदी

स्वतन्त्रता
[हिन्दी प्रदीप]

हे स्वतन्त्रता प्यारी तू क्यों हमको इतना बिसर गई ।
भारत छोड़ किधर को भागी हमको इकला छोड़ गई ।।

ईश्वर पुत्री जग की प्यारी गुण की आगर कहा गई ।
हाय हाय कह रोवैं भारतवासी तेरा नाम लई ।।

जीवन फुलवारी का तू ही तो इक पुष्प सुगन्धित है ।
तेरे बिन यह सूनसान है जग सुख सारा खण्डित है ।।

किसी भांति की रोक-टोक जब मानव चित पर रहती है ।
नहीं काम कर सकता पूरा जिसमें तबियत लगती है ।।

विद्या बुद्धि शिल्प अरु सूनृत का कदापि नहिं बास वहा ।
सबही गुण इक-इक कर भागें स्वतन्त्रता है नही जहा ।।

जैसा की एक छोटा पोधा दब कर नहीं उभड़ता है ।
वैसा ही यह चित मनुष्य का उठै नही जब गिरता है ।।

पर वे वीर सही है जो गिर कर भी नहिं हुए निरास ।
कमर बांध लड़ने पर तत्पर एक शस्त्र रख केवल आस ।।

प्रकृति ने यह ढंग रचा है जीव सभी होवें स्वाधीन ।
उसकी देन सबहिं को एकसा क्या धनाढ्य अरु क्या धनहीन ।।

हेमाचल के पर्वत पर अरु सहरा के भी जंगल में ।
सबहिं ठौर भोजन को मिलता सबहिं कटै सुख मंगल में ।।

ईश्वर की समस्त रचना में ऐसा है स्थान नही ।
जहां श्रमी उद्योगी को है जीवन का सामान नही ।।

यदि विपत्ति अरु काल कहीं पर कभी दिखाई पड़ते हैं।
एक मूल उनकी अधीनता जिससे सबही डरते हैं।।

एकहि भांति मनुज हैं आये उसी भांत वे जाते हैं।
समदर्शी निर्गुण के आगे सब समान दिखलाते हैं।।

तब किसको अधिकार कहें यह हम धनाढ्य अरु धनहीन।
औरों के कर्मो को रोके देन प्राकृतिक लेवें छीन।।

क्या हो अद्भुत वस्तु मनुज भी श्रेष्ठ कहावै सृष्टी में।
पर भरे हुए ऐगुण इतने जो नहिं देखे पशुओं में।।

नहीं कभी एक घोड़ा कहता मेरो मूल्यवान है जीन।
गर्व नहीं उसको यह होता मेरा चमड़ा है रंगीन।।

यदि घमण्ड वह करता है तो केवल अपनी तेजी का।
पर हाय! नोचता मनुष्य को कैसी अभिमानी धनसंपत्ति का।।

एक एक के गुण नहिं देखैं ज्ञानवान् का नहिं आदर।
लड़ें कटें धन पृथ्वी छीनें जीव सतावें लेवैं कर।।

भई दशा भारत की कैसी चहूं ओर विपदा फैली।
तिमिर अज्ञान घोर है छाया स्वारथ साधन की शैली।।

हा वही भूमि यह आरज की जहं भये एक से एक सुधीर।
जहां कपिल, पातजलि उपजे, द्रोण और अर्जुन सम वीर।।

जहां धर्म में प्रौढ़ युधिष्ठिर, राम, बासुदेव, हरिचन्द्र।
व्यास, बाल्मीक से कितने जन्में श्रेष्ठ कविन के वृन्द।।

जहां भरत, गौतम, शंकर ने अद्भुत छटा दिखाई।
जहां भोज विक्रम के यश से रही संपदा छाई।।

हुई दशा है उसी भूमि की हाय आज कैसी न्यारी।
विद्या गुण तो घटते जाते पर अभिमान रहा भारी॥

अपनी अपनी चाल ढाल को सब कोउ धर-धर छप्पर पर।
चले ढुलकते बुरी प्रथा पर जिसका कहीं पैर नहिं सर॥

धनी दीन को दुख अति देते हमदरदी का नाम नहीं।
धन मदिरा गनिका में फूंकैं करैं भला कुछ काम नहीं॥

कभी कभी संशोधक होने का यदि किसी को आया ध्यान।
समझ लिया एक स्वांच झाड़ना है बस मेरा पूरा ज्ञान॥

लाग नहीं उनको पतियाते सच पूछो तो बात यही।
देश उपकार करेगा वह क्या जिसका मन है विमल नहीं॥

ऐसी भूमि में हे स्वतन्त्रते हो नहिं सकता तेरा बास।
जहां कुटिल अरु नीच प्रकृत हों बने सभी स्वारथ के दास॥

तेरे रहने को हे प्यारी उज्ज्वल हृदय भवन चहिये।
तौ भी दशा देख भारत की अब तो दया दृष्ट करिये॥

भरा स्वार्थ से हृदय हमारा दीजै हमको दान यही।
तेरी मूर्ति मोहनी प्यारी रहै सदा चित मांहि बसी॥

जिसे देख देखकर मुझ में बल अरु साहस अधिक बढ़ै।
कि तेरा गुण मैं जग में गाऊं जिससे भारत कष्ट कढ़ै॥

पुरुषोत्तमदास टंडन

सच्चा साधु

(हिन्दी प्रदीप)

तन मन से जो परकारज में अपना जन्म बिताता है।
पुनि स्वदेश बंधुन प्रसन्न लखि जिसका दिल हरषाता है।।

प्यारी जन्मभूमि की दुर्गति जिससे सही न जाती है।
अपने पुरुखों के यश की सुध जिसको सदा सुहाती है।।

जो 'स्वदेश' की मूरखता पर क्षण भर चैन न पाता है।
लोगों के आलसी हृदय में जो उत्साह बढ़ाता है।।

निज भाई सम जान सबों को सत उपदेश सुनाता है।
अरु कुपंथ से तिन्हे बचाकर धर्म राह ले जाता है।।

जो 'स्वदेश' हित दुष्ट जनों की गाली भी सह लेता है।
उनकी निन्दित बातों की भी ओर ध्यान नहिं देता है।।

जिसके हृदय, लोभ, स्वारथ का रंचक भी लवलेश नही।
आत्मीयता देश बन्धुन संग कितनी, जिसका शेष नही।।

सोते-जगते, खाते-पीते यही सोच जिसको भारी।
किस विधि 'भारत' मे 'स्वतन्त्रता' होवे मुद मंगलकारी।।

जिसके लिए नरक भी सुखकर, अनुचित कारागार नही।
अरु 'स्वदेश' हित प्राण त्यागने में भी कुछ इन्कार नही।।

जिसने यह दृढ़ ठान लिया है, 'कुछ हो कष्ट उठावेंगे।
पै दुर्दशा ग्रस्त भारत को उच्चासन बैठावेंगे।।'

गर्व रहित हो इस प्रकार से निज कर्त्तव्य दिखाता है।
वही धन्य अरु पृथ्वीतल पर, 'सच्चा साधु' कहाता है।।

माधव प्रसाद शुक्ल

त्राहि त्राहि शिव

[हिन्दी प्रदीप]

हाय आज यह देश विकल हो दुख से पीड़ित ।
टेरत हैं हे नाथ-त्रिलोचन ! आन दयाचित ।।१।।

डूबे हम सब हाय ! महादुख सागर माहीं ।
त्राहि त्राहि, शिव ! त्राहि तोहि बिन दूसर नाहीं ।।२।।

हे शिव काशीनाथ ! हरो दुख हम दीनन के ।
सुख संपत्ति नित बढ़े, सुविद्या बुध भारत के ।।३।।

नावत हैं हम माथ, अहो गौरी पति तुमको ।
दुख से देहु उबार, बचाओ इस भारत को ।।४।।

१

रूप विराट ललाट सुसुन्दर तापर भाल त्रिपुंड बिराजै ।
गौर शरीर लसै उपवीत रमाय बभूत मनोहर छाजै ।।
कंठ सुशोभित नील अहा, अरु तापर सर्प अनेकन भ्राजै ।
शीश मनोहर श्याम जटा पर गंग मनोहर की छवि साजै ।।

२

हाथ लसै तिरसूल, घने डमरू उनके सुनि पातक भागे ।
डाकिन शाकिन, भूत पिशाचन बीर अनेकन नाचत आगे ।।
लोचन काल महाबिकराल निहारत ही दुख दारिद भागे ।
पादुका शब्द त्रिलोचन के सुनि लोचन भारत मोद में पागे ।।

३

आर्त अहा हमरी बिनती सुन संकर देव महा बरदानी।
निश्चय ईश कृपालु महान अहै करुणाकर नाथ भवानी ।।
आकुल भारत की बिनती सुनि रच विलम्ब अहो, नहिं आनी।
शंभु ! उबारु दयालु उमापति ; टेरत भारत आरतबानी ।।

४

प्लेग नसै कुमती जरि के दुख दारिद भी जरि के हट जावे।
भाग अकाल पताल चलै सुख संपत्ति भारत मे चहुं धावे ।।
नाथ ! अनाथ सनाथ करा, करजोरि के भारत माथ नवावे।
'हे' 'निरलोचन' 'लोचन' को 'जनि लोचन ओट करो' शिर नावे ।।

लोचनप्रसाद पांडेय
बालपुर।

मानव

['वैश्योपकारक'—संवत् १९६१ श्रावण]

१

बीत गयो भीषम ग्रीषम अस आयो सावन ।
जस कुराज के गये नृपति कोउ मोद बढ़ावन ॥
हरित भूमि चहुं ओर मोर बोलत सुख पा के ।
जनु नृप जय जयकार करत परजा हरषा के ॥

२

जद्यपि है घनघोर घटा पै थमथम बरसत ।
जस बिभूति सम्पन्न रूस दल बलहि न परसत ॥
कड़क कड़क चपला चमकत मेघन पर छिन छिन ।
जिमि जापानी तोप खड्ग रिपु मारत गिन गिन ॥

३

धारा पात प्रहार सहत है गिरिगन ऐसे ।
रूसी दल की बाढ़ बीर जापानी जैसे ॥
दादुर बोलत चहुं दिसि में झींगुर झंकारे ।
जनु जपान की विजय गीति सब पत्र उचारे ॥

४

उमड़ि बेग सों नदिन पुरातन बिरछ उखारे ।
जनु बृटीश बाहिनिन तिब्बतीगन संहारे ॥
जल प्रवाह हो रोक सके नहिं कूल करारे ।
तिब्बतीय पथ में दिवार करि जस सब हारे ॥

५

सोम सूर्य सब छिपे तेज नहि देत दिखाई ।
जस भारत के वीरवंस निजता बिसराई ॥
अन्धकार सों राज-काज कछु किया न जावै ।
जस कलि के परताप पुण्य फैलन नहिं पावै ॥

राधाकृष्ण मिश्र—भिवानी

भारत विलाप

['स्वदेश बान्धव'—जून, १९०५]

१

बूड़त राखि लयो गज कों, हनि ग्राह सनेह के साज संजोये ।
नाम "हरी" के पुकारत ही तुम जाय सबै दुख कंटक खोये ।।
दीन-दशा लखि के भरि आवत आँसुन-सो नित नैनन-कोये ।
भारत आरत आपको हाय ! कहां इतने करुणानिधि सोये ।।

२

विश्व शिरोमणि भारत जो वह दीन मलीन रुहीन भयो ये ।
प्लेग, अकाल, दुकाल को कष्ट न जात दयानिधि हाय सह्यो ये ।।
सभ्य समाज चल्यो अगुआ बनि सोही पिछार निहारि रह्यो ये ।।
मीचिके आंखि मलै मुख नीद कहां करुणानिधि डाटि कै सोये ।।

३

कोमल जो नव फूल खिले हिय बेधि बिधे ! दुख-तार पिरोये ।
देश दरिद्र दुखी फिरहूं तुम ताहू पै कौन नसा महिं भोये ।।
विप्र सुदामा को हेरि इतो अपनो जन जानि दयानिधि रोये ।
भारत गारत हेरि किते करुणा तजिकै करुणानिधि सोये ।।

४

नामहि लेत धुरू प्रहलादरु द्रौपदि के दुख धाय के धोये ।
वेद पुराण पुकारत, नारत, टारत भवत-त्रितापनि जोये ।।
टेरते आरत गारत भारत "माधव माधव" अश्रु बिगोये ।
नाम धरायलयो करुणानिधि भाजि कहां करुणानिधि सोये ।।

५

लीजिये चोर हृदयहि को लखि लीजिये बीज सनेह के बोये ।
जाउ बड़े कोउ काऊसी बातन नेह के पथ अगार रह्यो ये ।।
प्रेम के फंद फस्यो तब नाथ ! सिरे सबरे जग संकट ढोये ।।
भूलि के भारत के हिय मूल कहां करुणा वरुणालय सोये ।।

६

टेरत हेरत हाय ! हरे, रसना रसना मधि आज रह्यो ये ।
कातर कंठ बनै न गुहारत कष्ट कठोर न जात कह्यो ये ।।
जाहो सोंहे शरणागत वत्सल ! भारत आमरो आप लयो ये ।
तानि पितम्बर पायन लों भरि नीद कहा करुणानिधि सोये ।।

७

काहू की बेर नृसिंह बराहरु बामन रूप हँमे मधु रोये ।
काहू की बेर को राम हरी घनश्याम जू लै अवतार सजोये ।।
काहू की बेर उराहने पायन आतुर भाजि सबै दुख खोये ।
भारत बेर अबेर करी तुम हाय कहां करुणानिधि सोये ।।

८

रैन दिना कलि नाहिं परै अजहूं तुम केशव नींद में सोये ।
दुःख के जालहि लेहु समेट जो भारत में चहुँ ओर बिछोये ।।
जोरि निहोरि कहै सतदेव दया करि नाथ जू ! टेर सुनोये ।
काहे के हो करुणानिधि जू जब कानन दै अंगुरी तुम सोये ।।

सत्यनारायण, धाधूपुर—आगरा

शिव भारत

['स्वदेश बान्धव'—मार्च, १६०६]

पूरब पच्छिम घाट चरण मुद मंगलकारी।
विन्ध्याचल कटि देस नाभि सांभर दुखकारी॥

उर सम्मिलित प्रदेश बंग राजस्थल भावत।
मुख मंडल कश्मीर, ग्रीव पंजाब सुहावत॥

तपत भानु नव-किरण-माल सुभ सुभग विराजत।
हेम वरण हिमचन्द्र भाल धवलागिरि भ्राजत॥

सघन तरुन की अवलि जटिल अति जटा सँवारत।
हिम मय स्वेत सुरंग सकल भव ताप निवारत॥

ब्रह्म श्याम अरु यवन देश युग भुजा पसारत।
मार-उछाहहिं मारि क्रोध परलय परचारत॥

हिमगिरि सिरसों गंग पुण्य परवाह प्रवाहत।
सत्यदेव अस शिव भारत मां आनंद चाहत॥

सत्यनारायण, धाधूपुर आगरा

मातृ-वन्दना

['स्वदेश बान्धव'—अप्रैल, १६०६]

है अनन्त प्रणाम मेरा, उसके चरणों में सदा।
जन्म दे जिसने बढ़ाया मुझे सहकर आपदा ।।

सावधानी मेरे हित जिसने, अहा की सर्वदा।
व्याधि और असंख्य रोगों से बचा करके सदा ।।

शीत, वर्षा और गर्मी से की रक्षा जो नित।
लौ लगाये रही मेरी ओर जो सुख दुख में चित ।।

जो है मेरी पूज्य प्रिय जग के जनों में से महा।
और है परमार्थ जिसमें रंच स्वार्थ न है अहा ।।

मुझको भाषा और बोली ज्ञान भी सिखला दिया।
दे सुशिक्षा जिसने मेरी बुद्धि को निर्मल किया ।।

लोचनप्रसाद पांडेय, बालपुर

हिन्द-वन्दना

['स्वदेश बान्धव'—फरवरी, १६०७]

जय जय अनादि अनमधि अनन्त, जय जय जगवन विकसत बसन्त ।
जय जय अच्युत अनवधि अपार, जय जय जग नाटक-सूत्रधार ।
जय जय सुन्दर सुखमा रसाल, जय जय शरणागत प्रणतपाल ।
जय जय धुरीण धृति धर्म्म एन, जय जय जगदीनहि दान दैन ।
जय जय जग-बन्दन पारिजात, जय जय दश दिशि वन्दन प्रभात ।
जय जय थल श्यामा श्याम केलि, जय जय सुखधामा प्रेम-बेलि ।
जय जय जग प्रचुर पुनीत काय, जय जय अमान नित मान पाय ।
जय जय विनोद सुरसरी स्रोत, जय जय श्रीधर विद्युत उद्योत ।
जय जय अथाह सत्यानुराग, जय जय प्रवाह पूरण प्रयाग ।
जय जय चंचल मन नहिं धरीक, जय जय प्रभु चरणन चचरीक ।
जय जय अकाम नित न्याय धाम, जय जय जगकर शोभाभिराम ।
जय जय दयार्द्र प्रेमाश्रुपूर, जय जय करन संग नित अक्रूर ।
जय जय विशोर विद्वल्ललाम, जय जय अशेष बल पूर्ण काम ।
जय जय प्रधान सब गुण निधान, जय जय प्रवीण मंगलविधान ।
जय जय पतिव्रता पुण्य-पाति, जय जय अकलंक समस्त भाति ।
जय जय परिपूर्ण ब्रह्मनिष्ट, जय जय भवरुज चूरण बलिष्ठ ।
जय जय अभोष्ट आनन्द कन्द, जय जय उल्लास अमन्द-चन्द ।
जय जय मञ्जुल जग हृदय-माल, जयजय जगमग जग ज्योति जाल ।
जय जय मनमोहन सौम्य रूप, जय जय कछु कोह, न विश्व भूप ।
जय जय जग उज्जल नवल रत्न, जय जय उदार साधन प्रयत्न ।
जय जय निश्चल निष्कपट नेम, जय जय दम्पति अति शुद्ध प्रेम ।
जय जय सुन्दर सद्धर्म-सार, जय जय जग-सतगुरु सब प्रकार ।
जय जय अव्यक्त अविचल सुधार, जय जय वसुधा मधि सुधाधार ।
जय जय सुखमय मानन्द सद्म, जय जय प्रमोद प्रस्फुटित पद्म ।
जय जय ललाट हिम शैल शृंग, जय जय मधुलोलुप मुकुट भृङ्ग ।

जय जय चिन्तामणि चन्द्रकान्ति, जय जय प्रशस्त पावन प्रशान्ति ।
जय जय जल कंठ निनाद गान, जय जय द्विज गो-पालक महान ।
जय जय मुकलाधर धरा इन्दु, जय जय पद पद पीयूष बिन्दु ।
जय जय कल कान्ति कला कलोल, जय जय अमोल अति ललित लोल ।
जय जय अद्भुत आभा अखण्ड, जय जय मरकत मणि-मार्तण्ड ।
जय जय वसुन्धरा-छवि अछुद्र, जय जय जग वांछा सरि समुद्र ।
जय जय महर्षि यशनिचय थम्ब, जय जय समस्त जगतावलम्ब ।
जय जय प्रताप प्रगदत प्रदीप, जय जय महि मण्डल मखमहीप ।
जय जय अभिमत प्रद कामधेनु, जय जय जग मृग हरन वेनु ।
जय जय करुणा कमनीय कुञ्ज, जय जय प्रिय पावन प्रणयपुञ्ज ।
जय जय रमिया हिय सरल शान्त, जय जय जग रुचि कामिनी कान्त ।
जय जय राखत निज वचन टेक, जय जय त्यागत नहिं धर्म एक ।
जय जय हिय कोमल बलअमेय, जय जय निर्भय भीषण अजेय ।
जय जय निशंक निर्द्वन्द वीर, जय जय ध्रुवसम ध्रुव अचल धीर ।
जय जय रिपु रण नहिं पीठ दैन, जय जय धनेश मदलेश, पै न ।
जय जय पराक्रमी मनहु विष्णु, जय जय साधारण मन सहिष्णु ।
जय जय गुणगुण गौरव असीम, जय जय कराल संग्राम भीम ।
जय जय जय कंकन कर विशाल, जय जय प्रगल्भ रणशत्रु साल ।
जय जय प्रण पूरण भरत खण्ड, जय जय अरि दल नाशन प्रचण्ड ।
जय जय खल गञ्जन विदित जक्त, जय जय मन रञ्जन राजभक्त ।
जय जय त्रिभुवन विख्यात देश, जय जय अपूर्व अतुलित अशेष ।
जय जय नित निरमल नय निकुञ्ज, जय जय पपिया, पिया पिया गुञ्ज ।
जय जय आरज कुल-कीर्ति केतु, जय जय अनगढ़ दृढ़ वेद सेतु ।
जय जय जग जीवन जन अनन्य, जय जय धीरज धन धन्य धन्य ।
जय जय अनभव अमलारविन्द, जय जय सदैव सतदेव हिन्द ।

वीर बालक

['श्रीकान्यकुब्ज हितकारी'—फरवरी, १९१४]

१

वीर योनि चित्तौर धरित्री हाय ! आज हो रही विपन्न,
उसके उस स्वातन्त्र्य रत्न का सर्वनाश अब है आसन्न ।
है मिट्टी में मिला चाहती उसकी यह सत्कीर्त्ति पवित्र,
दृष्टि ! किस तरह देखेगी तू यह कठोरतर भीषण चित्र ।।

२

बचे हुए भारत-गौरव का आज हाय ! क्या होगा अन्त,
चढ़ आया है वीर भूमि पर अकबर लेकर सैन्य अनन्त ।
उदयसिंह छिप गया कहीं है होकर भीत मृत्यु से हाय,
प्यारी जननी जन्मभूमि की कौन करेगा आज सहाय ?

३

शूर श्रेष्ठ विज्ञवर जयमल अपनी मातृभूमि के हेतु,
अमर हो चुके हैं तनु तजकर होकर धीर वीर कुल केतु ।
भारत की आशा का भी क्या हो जावेगा आज निपात ?
क्या चुपचाप सभी देखेंगे निज स्वतन्त्रता का अभिघात ।।

४

देखो, अहा ! वीर बालक वह तेजस्वी बल वीर्य निकेत,
रण में जाने को उद्यत है हर्ष और उत्साह समेत ।
होकर सज्जित समरवेश में प्रमुदित होता हुआ विशेष,
पहुंचा मां के निकट शीघ्र वह लेने को उसका आदेश ।।

५

"आशीर्वाद दीजिये हे मा ! करने को स्वदेश का त्राण,
विचलित होऊं नहीं युद्ध में निकल जायं चाहे ये प्राण" ।
धन्य वीर बालक प्रताप का सुनकर यह अत्युच्च विचार,
मां का कण्ठ हो गया गद्गद् करके प्राप्त प्रमोद अपार ।।

६

अपने एकमात्र उस सुत को भारत गौरव के रक्षार्थ,
रण में जाने की मां ने यों दिया निदेश त्याग कर स्वार्थ ।
ईश्वर मंगल करे तुम्हारा जाओ रण में वत्स सहर्ष,
वही काम करना तुम जिससे मातृभूमि का हो उत्कर्ष ।।

७

मां के पदपद्मों को छूकर धारण कर उल्लास अनन्त,
तीर वेग से निकल वहां से पहुंचा वह रण मध्य तुरन्त ।
उस षोडश वर्षीय वीर की यह अपूर्व निर्भयता देख,
बढ़े हुए उत्साह शौर्य से उत्साहित सब हुए विशेष ।।

८

फिर सेना नायक के पद पर होकर संस्थित वीर प्रताप,
मातृभूमि के उन रिपुओं को देने लगा तीक्ष्ण सन्ताप ।
उस बालक का शौर्य देखकर होकर महाश्चर्य मलीन,
सम्राट अकबर जय आशा से अकस्मात् हो गया विहीन ।।

९

लगीं उगलने गोले तोपें करके भीषण नाद नितान्त,
प्रबल शत्रुओं का साहस वे करने लगीं शीघ्र ही शान्त ।
उत्साही प्रताप को पाकर सप्रताप हो सैन्य समस्त,
करने लगी शत्रु सेना को निरुत्साह भय-चिन्ता-ग्रस्त ।।

१०

रिपु-निधनार्थ सवेग वहां पर लगा घूमने वह अविराम,
जिधर देखते थे, पाते थे, उसकी दिव्य दृष्टि अभिराम ।
उसका अद्भुत कार्य देखकर आती थी मन में यह बात,
वीर षड़ानन कार्तिकेय ज्यों करते हों अग्निवृन्द विघात ।।

११

आश्चर्यित करती थी सबको उसके तीक्ष्ण शरों की चाल,
पाकर उसका शर अनेक रिपु अन्य लोक पहुंचे तत्काल ।
आती हुई समक्ष गोलियां करके यह बाणों से व्यर्थ,
करने लगा नष्ट यवनों को मातृभूमि रक्षा के अर्थ ॥

१२

उसने रिपु के एक झुण्ड का कर डाला तुरन्त ही अन्त,
पर क्या हो सकता था इससे थी मुगलों की सैन्य अनन्त ।
एक और दल आगे बढ़कर शीघ्र आ डटा वहां सगर्व,
पर प्रताप ने उसका भी झट सारा गर्व कर दिया खर्व ॥

१३

निज सेना की दशा देख यह अकबर चिन्तित हुआ विशेष,
करने लगा साहसी उसको देकर बढ़ने का आदेश ।
उसकी उत्तेजक वाणी से हुए मुगल अस्थिरता हीन,
अब की बार राजपूतों का होने लगा तेज कुछ क्षीण ॥

१४

इसी समय यह वीर नारियां धारण कर कठोर रण वर्म्म,
दुर्गस्थित हो लगीं बेधने रिपुओं की सेना के मर्म्म ।
करती थीं जो रण-कौशल से अरिगण का सब गर्व विमुक्त,
थीं उनमें प्रताप की माता, वधू और पुत्री संयुक्त ॥

१५

वीर गीत गाकर वे रमणी करके प्राण मोह को त्यक्त,
अपनी अतिशय प्रबल शक्ति को करने लगी वहां पर व्यक्त ।
माता, बहिन तथा पत्नी को वीर वेश में वहां निहार,
पाने लगा प्रताप और भी हृदय बीच आनन्द अपार ॥

१६

थी यद्यपि मुगलों की सेना नभ की तारावली समान,
थी यद्यपि वह उपकरणों में सभी भांति अतिशय बलवान ।

पर उन वीर नारियों द्वारा पाकर भीषण शस्त्र प्रहार,
विचलित वह हो उठी वहां फिर मानो मृत्यु समक्ष निहार ।।

१७

उनका वह वीरत्व देखकर अकबर मुग्ध हुआ अत्यन्त,
उसने यह अपनी सेना में सब पर प्रकटित किया तुरन्त ।
"जो कोई ये तीन नारियां जीवित पकड़ लायगा आज,
जहांपनाह उसे देवेंगे मनमाना धन दौलत राज" ।।

१८

पर उस समय हो गये थे लज्जा से उन्मत्त समान,
बादशाह की इस वाञ्छा पर दिया किसी ने जरा न ध्यान ।
होने लगा युद्ध अतिशय था बड़े वेग से दोनों ओर,
करते थे दिगन्त को घोषित रण सम्बन्धी शब्द कठोर ।।

१९

फिर भगिनी वीर प्रताप की करके बिपुल शत्रु संहार,
प्राप्त हुई वीरों की गति को फैलाकर निज कीर्ति अपार ।
यों ही उस सुवीर की माता, पत्नी भी हत हुई निदान,
पर वह लड़ता रहा उसी विध रक्खे हुए धर्म पर ध्यान ।।

२०

यद्यपि क्षत्रिय अपने बल पर रखते थे पूरा विश्वास,
पर रिपुओं की विशालता ने उन्हें अन्त में किया निरास ।
तब उन सबकी वीर नारियां हो जौहर व्रत को तैयार,
भारत की सतीत्व महिमा पर करने लगी मुग्ध संसार ।।

२१

आगत हुई अंधेरी रजनी बन्द हुआ संग्राम कठोर,
रणक्षेत्र में पड़े रह गये रुण्ड-मुण्ड ही चारों ओर ।
इसी समय उस दिव्य दुर्ग में ज्वाल धधकने लगी कराल,
हंसती हुई सैकड़ों बधुएं उसमें कूद पड़ी तत्काल ।।

२२

धन्य धन्य धक धक के मिस से कहकर अग्नि प्रकाश निधान,
उसी जगह को हीन, जगत को आलोकित कर उठी महान।
आर्य धर्म की शुभ सजीवता, उस प्रकाश मे विश्व समस्त,
लगा देखने आश्चर्यित हो गाकर उसकी कीर्ति प्रशस्त ॥

२३

छाया था सर्वत्र अंधेरा, थी अत्यन्त भयंकर रात,
कितनो ही रमणी स्वधर्म पर थीं कर चुकी शरीर निपात।
बैठ गये तेजस्वी क्षत्रिय उद्घाटित कर दुर्गद्वार,
करने लगे प्रतीक्षा दिन की जीवन का सब मोह बिसार ॥

२४

कुंचित सब उनके ललाट थे करने मे गम्भीर, विचार,
मातृभूमि पर मर जाने को प्रस्तुत थे वे भले प्रकार।
उन्हें मोह था नहीं किसी का, था तो मातृभूमि का मोह,
उन्हे मृत्यु का सोच यही था, होगा हाय ! स्वदेश विछोह ॥

२५

आखिर वह महिमामय दुर्दिन आ पहुँचा, हो गया निशान्त,
रिपुओं से भिड़ जाने को वे उत्कंठित हो उठे नितान्त।
मातृभूमि के लिए मरेंगे यद्यपि उन्हे इसका था हर्ष,
उसकी भावी दशा सोचकर थे परन्तु वे कम न विमर्ष ॥

२६

सागर की लहरों सी बढ़कर वह मुगलों की सैन्य अशेष,
हाय ! हाय ! चित्तौर दुर्ग में साभिमान कर उठी प्रवेश।
रोका उसे राजपूतों ने छाती अड़ा वहां सानन्द,
छक्के छुड़ा दिये रिपुओं के करके उसका वैभव मन्द ॥

२७

अति उत्साह समेत वहां फिर होने लगा घोर संग्राम,
कितने ही जन सदा काल को लेने लगे शीघ्र विश्राम।
हट जाता है ज्यों पीछे को पत्थर से टकरा कर बाण,
पीछे हटने लगा उसी विध रिपु-सैनिक समूह बलवान।।

२८

बादशाह ने जब यह देखा क्षत्रिय हैं अपूर्व रण-धीर,
नहीं हरा सकता है इनको इस प्रकार कोई भी वीर।
मत्त डेढ़ सौ हाथी उसने छुड़वाये तब वहां तुरन्त,
और बढ़ाई सेना आगे कर जय की आशा अत्यन्त।।

२९

छूटा ज्योंही वह हाथीदल लगा रौंदने शत शत वीर,
प्रकृत वीर क्षत्रिय पर तो भी रहे पूर्व से ही अति धीर।
अब उनका वीरत्व और भी पाने लगा विशेष विकाश,
जिस प्रकार बुझने के पहले बढ़ जाता है दीप प्रकाश।।

३०

वे हाथी भी उन शूरों की हानि नहीं कर सके विशेष,
छुड़वाये तब गये और भी वहां तीन सौ मत्त गजेश।
वीर क्षत्रियों की सेना का आ पहुंचा अब अंतिम काल,
करने लगा शिथिल अब उसको वह सशक्त गजवृन्द विशाल।।

३१

लड़ने लगे हाथियों से भी राजपूत जन शौर्य समेत,
मर्म स्थान विद्ध कर उनके, लगे भेजने मृत्यु निकेत।
पर स्वदेश रक्षण में अब वे होने लगे सभी निरुपाय,
आखिर वे मनुष्य ही तो थे, पाते विजय कहां तक हाय।।

३२

तब निज सुरीलियों के सम्मुख धारे कर-कर में करवाल,
देव मूर्तियों की रक्षा को खड़े हो गये वे तत्काल।
कैसे तजते रणक्षेत्र वे जब तक थे शरीर में प्राण,
त्राण उन्होंने किया धर्म का जब तक नहीं हुए म्रियमाण ।।

३३

जब बीर प्रताप ने देखा अपनी सेना का यह हाल,
ज्वाल पूर्ण हो उठे क्रोध से तत्क्षण उसके नेत्र विशाल।
झपटा त्वरित हाथियों पर वह करने को उनका अभिघात,
प्रकट सिंह शावक के सम वह हुआ उस समय सबको ज्ञात ।।

३४

एक झूमता हुआ मत्त गज था आ रहा सवेग समक्ष,
वह विनष्ट कर चुका बहुत था वीर राजपूतों का पक्ष।
धावित होकर बड़े वेग से करके उसका पथ अवरुद्ध,
शुण्ड छिन्न उसकी तुरन्त हो कर दी उसने होकर क्रुद्ध ।।

३५

करके भीमनाद वह हाथी पीछे लौट पड़ा तत्काल,
भेद दिया इस समय किसी ने शर द्वारा प्रताप का भाल।
अकस्मात् के उस प्रहार से क्षिति पर वह गिर पड़ा तुरन्त,
उसे पकड़ने को अनेक अरि तत्क्षण दौड़ पड़े हा हन्त ।।

३६

राजपूत तब खड़े हो गये उसे घेर रक्षा के अर्थ,
इससे उसे पकड़ने में रिपु नहीं जरा भी हुए समर्थ।
क्रमशः अपनी शक्ति अतुल का होता हुआ देखकर ह्रास,
कहने लगा बचन तब वह ये लेकर एक दीर्घ निश्वास ।।

३७

"पराधीन कर मातृभूमि को हाय ! विश्व में सभी प्रकार,
गमनोद्यत मैं हूं पृथ्वी से है मुझको सहस्र धिक्कार।

भूतल पर आते ही मेरा तत्क्षण क्यों हो गया न नाश,
तो क्यों मुझे देखना पड़ता राजपूत गौरव का ह्रास ।।

३८

"अथवा इसमें किसका बस है, यह सब विधि के स्वाधीन,
यह भी अच्छा हुआ कि मेरा होता है अब जीवन क्षीण ।
अब न देखना मुझे पड़ेगा भारत का विशेष अपकर्ष,
रहना पड़े नरक में चाहे अन्यलोक मे लाखों वर्ष ।।"

३६

"मरता हूं मै यद्यपि रण मे, है यह बड़े भाग्य की बात,
देख रहा हूं किन्तु इस समय भारत महिमा का अभिघात ।
यह अनन्त निद्रा भी मुझको देगी नहीं शांति का लेश,
हा ! स्वतंत्रता बिना मृत्यु भी देती है दुख दाह अशेष ।।

४०

"सूर्यदेव ! तुम भारत भू को जला क्यों नहीं देते हाय !
पर पददलित हो रहो है यह होकर सब प्रकार असहाय ।
निज कुल की भी देख दुर्दशा हो कैसे तुम क्रोध विहीन ?
पुण्यभूमि यह आज हमारी है कैसी हा ! दीन मलीन ।।

४१

बोल सका वह और न तनु से बहने लगी रक्त की धार,
जा पहुंचा फिर स्वर्गधाम में वह अपूर्व गुण गरिमागार ।
जाओ वीर सहर्ष स्वर्ग में, कैसे कहे, हाय, हम लोग ?
वीरभूमि परतंत्र हो गयी होते ही तब विषम वियोग ।।

मातृ-भूमि

[संगीत सौरभ]

जन्म दिया माता-सा जिसने,
किया सदा लालन-पालन।
जिसके मिट्टी-जल से ही है,
रचा गया हम सब का तन।।
गिरिवर-गण रक्षा करते हैं,
उच्च उठा के शृंग महान।
जिसके लता-द्रुमादिक करते,
हमको अपनी छाया-दान।।
माता केवल बालकाल में,
निज गोदी में रखती है।
हम अशक्त जब तलक तभी तक,
पालन-पोषण करती है।।
मातृ-भूमि करती है मेरा,
लालन सदा मृत्यु-पर्यन्त।
जिसके दया-प्रवाहों का नहिं,
होता सपने में भी अन्त।।
मर जाने पर कण देहों के,
इसमें ही मिल जाते हैं।
हिन्दू जलते, यवन, ईसाई,
दफन इसी में पाते हैं।।
ऐसी मातृभूमि है मेरी,
स्वर्गलोक से भी प्यारी।
जिसके पद कमलों पर मेरा,
तन-मन-धन सब बलिहारी।।

मन्नन द्विवेदी

प्रभात-फेरी

[संगीत सौरभ]

उठो सोने वालो, सबेरा हुआ है,
वतन के फकीरों का फेरा हुआ है।

जगो तो निराशा-निशा खो रही है,
सुनहरी सुपूरब दिशा हो रही है,
चलो मोह की कालिमा धो रही है,
न अब कौम कोई पड़ी सो रही है।

तुम्हें किस लिए मोह घेरे हुआ है?
उठो सोने वालो, सबेरा हुआ है।

जवानो उठो, कौम की जान जागो,
पड़े किस लिए देश की शान जागो,
तुम्हीं दीन की आस-अरमान जागो,
शहीदों की सच्ची सुसन्तान जागो।

चलो दूर आलस अंधेरा हुआ है,
उठो सोने वालो, सबेरा हुआ है।

उठो देवियो, वक्त खोने न देना,
कहीं फूट के बीज बोने न देना,
जगें जो उन्हें फिर से सोने न देना,
कभी देश अपमान होने न देना।

मुसीबत से अब तो निबेरा हुआ है,
उठो सोने वालो, सबेरा हुआ है।

नयी कौमियत मुल्क में उग रही है,
युगों बाद फिर हिन्द मां जग रही है,
खुमारी लिये जान को भग रही है,
दिलों में निराली लगन लग रही है,

शहीदों का फिर आज फेरा हुआ है,
उठो सोने वालो, सबेरा हुआ है।

अज्ञात कवि

उद्बोधन

[संगीत सौरभ]

अब तो उठो, क्या पड़ रहे हो व्यर्थ सोच विचार में ?
सुख दूर, जीना भी कठिन है, श्रम बिना संसार में।
पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल, सब लग रहे हैं काम में।
फिर क्यों तुम्हीं खोते समय हो व्यर्थ के विश्राम में।
बीते हजारों वर्ष तुमको, नींद में सोते हुए।
बैठे रहोगे और कब तक भाग्य को रोते हुए ?

२

यदि हम किसी भी कार्य को, करते हुए असमर्थ हैं,
तो उस अखिलकर्ता पिता के, पुत्र ही हम व्यर्थ हैं।
अपनी प्रयोजन-पूर्ति क्या हम आप कर सकते नहीं ?
चालीस कोटि मनुष्य क्या निज ताप हर सकते नहीं ?
क्या हम सभी मानव नहीं, किंवा हमारे कर नहीं ?
रो भी उठें हम, तो बने क्या अन्य रत्नाकर नहीं ?

३

प्रत्येक जन प्रत्येक जन को, बन्धु अपना जान लो।
सुख-दुःख अपने बंधुओं का आप अपना मान लो।
अनुदारता-दर्शक हमारे, दूर सब अविवेक हों।
जितने अधिक हों तन, भले हैं, मन हमारे एक हों।
आचार में कुछ भेद हो, पर प्रेम हो व्यवहार में।
देखें हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में?

४

बन कर अहो! फिर कर्मयोगी वीर बड़भागी बनो।
परमार्थ के पीछे जगत् में स्वार्थ के त्यागी बनो।
होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो।
सब देश-हितकर कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो।
धर्मार्थ के भोगी रहो, बस कर्म के योगी रहो।
रोगी रहो, तो प्रेम रूपी रोग के रोगी रहो।

मैथिलीशरण गुप्त

स्वतंत्र देश के नवयुवक

[संगीत सौरभ]

१

शक्ति प्रदर्शन को जब कोई, गर्वित शत्रु प्रबल दल सजकर।
या बहु वैभव देख लोभ वश, कोई निठुर दस्यु सीमा पर।
आकर धन-जन पर पड़ता है, निर्भय रण दुंदुभी बजाकर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

२

क्रुद्ध सिंह सम निकल प्रकट कर, अतुलित भुजबल विषम पराक्रम।
युद्ध-भूमि में वे बैरी का, दर्प दलन कर लेते हैं दम।
या स्वतंत्रता की वेदी पर, कर देते हैं प्राण निछावर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

३

या स्वदेश ही में जब कोई, स्वेच्छाचारी निपट निरंकुश।
शासन राज-शक्ति से रक्षित, लंपट, लोलुप, क्रूर, कापुरुष।
निज कर्त्तव्य-विरुद्ध प्रजा पर, करता है अन्याय घोरतर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

४

व्यथित प्रजा के बीच वास कर, निर्भय भावों का प्रचार कर।
सत्य-शक्ति के अवलंबन से, शासन में निश्चित सुधार कर।
वे होते हैं हृदय मंच पर, या तो कारागृह के भीतर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

५

जाता है जब फैल देश में, कोई विषम रोग संक्रामक।
अथवा ऊपर आ पड़ता है, जब भीषण दुर्भिक्ष अचानक।
तब जनता पुकार उठती है, त्राहि-त्राहि स्वर से अति कातर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

६

वे प्राणों का मोह छोड़कर, निशि दिन घाम-शीत सब सहकर।
धर्म भाव से प्रेरित होकर, भू-पर सोकर, भूखे रह कर।
परम सुहृद बनकर समाज की, सेवा में रहते हैं तत्पर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

रामनरेश त्रिपाठी

विप्लव गान

[संगीत सौरभ]

कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिसमें उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का, धुवांधार जग में छा जाये।।
बरसे आग, जलधि जल जायें, भस्मसात् भूधर हो जाये,
पाप-पुण्य, सद-असद भाव की, धूल उड़ उठे दायें-बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक-टूक हो जायें।
कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिसमें उथल-पुथल मच जाये।।

२

माता की छाती का, अमृतमय पय कालकूट हो जाये,
आंखों का पानी सूखे, वे शोणित की घूंटें हो जायें।
एक ओर कायरता कांपे, गतानुगति विगलित हो जाये,
अंधे, मूढ़ विचारों की वह, अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कंपा देनेवाला गर्जन उठ धाये।
अन्तरिक्ष में एक उसी, नाशक तर्जन की ध्वनि मंडराये,
कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिसमें उथल-पुथल मच जाये।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

नया संसार

[संगीत सौरभ]

एक नया संसार
युवक बनायेंगे हिल-मिल कर, एक नया संसार,
तरुण बनायेंगे रच-रच कर, एक नया संसार।

१

तरुण क्रान्ति मन-मन मचलेगी,
नगर-नगर, वन-वन उछलेगी,
प्रान्त-प्रान्त, पुर-पुर बिछलेगी,
दुनिया को लपटों में लिपटा,
हा-हा करती हुई मचलेगी।
यह मरघट की शान्ति जलेगी,
लिपी-पुती मुख-कान्ति जलेगी,
क्लेश जलेगा, क्लान्ति जलेगी,
तरुण क्रान्ति की अग्नि शिखा में,
जग-जीवन की भ्रान्ति जलेगी।
जग की राखों पर सुलगेगा एक नया संसार॥

२

सामाजिक पापों के सिर पर
चढ़कर बोलेगा अब खतरा,
बोलेगा पतितों-दलितों के
गरम लहू का कतरा-कतरा।
होंगे भस्म अग्नि में जलकर,
धरम-करम औ पोथी-पत्रा,

और पुतेगा व्यक्तिवाद के
चिकने चेहरे पर अलकतरा।
सड़ी-गली प्राचीन रूढ़ि के
भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे,
युग-प्रवाह पर कटे वृक्ष-से
दुनिया-भर के ढोंग बहेंगे।
पतित-दलित मस्तक ऊंचा कर
संघर्षों की कथा कहेंगे,
और मनुज के लिए मनुज के,
द्वार खुले के खुले रहेंगे।

वह दिन आने वाला होगा, धूम मचाने वाला होगा,
नींव हिलाने वाला होगा, जग में लाने वाला होगा,
नये रंग का, नये ढंग का, एक नया संसार ।।

—गोपालसिंह नेपाली

देश से आने वाले बता

[संगीत सौरभ]

ओ देश से आने वाले बता—

क्या अब भी शफ़क़ के सायों में,
दिन-रात के दामन मिलते हैं?
क्या अब भी चमन में वैसे ही,
खुशरंग शिगूफ़े खिलते हैं?
बरसाती हवा की लहरों से,
भीगे हुए पौदे हिलते हैं?

ओ देश से आने वाले बता।

२

ओ देश से आने वाले बता—

शादाब-ओ शिगुफ़्ता फूलों से,
मामूर है गुलज़ार अब कि नहीं?
बाज़ार में मालिन लाती है,
फूलों के गूंधे हार अब कि नहीं?
और शौक़ से टूटे पड़ते हैं,
नौखेज खरीदार अब कि नहीं?

ओ देश से आने वाले बता।

३

ओ देश से आने वाले बता—

क्या अब भी महकते मंदिर में,
नाकूस की आवाज़ आती है?

क्या अब भी मुकद्दस मस्जिद पर,
मस्ताना अज़ां थर्राती है?
और शाम के रंगीं सायों पर,
इक अज़मत-सी छा जाती है?
ओ देश से आने वाले बता।

४

ओ देश से आने वाले बता—

क्या अब भी फ़िज़ा के दामन में।
बरखा के समे लहराते है?
क्या अब भी किनारे दरिया पर,
तूफ़ान के झोंके आते है?
क्या अब भी अंधेरी रातों में,
मल्लाह तराने गाते हैं?

ओ देश से आने वाले बता।

५

ओ देश से आने वाले बता—

क्या हमको वतन के बागों की,
मस्ताना फ़िज़ाएं भूल गयीं?
बरखा की बहारें भूल गयीं,
सावन की घटाएं भूल गयीं?
दरिया के किनारे भूल गये,
जंगल की हवाएं भूल गईं?

ओ देश से आने वाले बता।

६

ओ देश से आने वाले बता—

क्या मांची पै अब भी सावन में,
बरखा की बहारें छाती हैं?
मासूम घरों से भोर भये,
चक्की की सदाएं आती हैं?
और याद में अपने मैके की,
बिछुड़ी हुई सखियां गाती हैं?

ओ देश से आने वाले बता।

—अख्तर शीराजी

कुसुम की चाह

चाह नहीं, मैं सुर-बाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊं,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूं, भाग्य पर इठलाऊं।
मुझे तोड़ लेना बनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।

—माखनलाल चतुर्वेदी

कौमी परवाने

[संगीत सौरभ]

भोले हरिणों के युगल नयन, उस दुष्ट बधिक से यों बोले,
मेरे आंसू की सरिता में, तू अपने पापों को धो ले।
तेरा इसमें कुछ दोष नहीं, हम तो स्वर के दीवाने हैं,
है आज़ादी जिनकी लैला, हम वे मजनूं मस्ताने हैं।
मृदु तानों पर मरने वाले, हम बीन बजाना क्या जानें?

२

जब आये मस्त फ़कीरी में, दुनिया के बंधन तोड़ दिये,
दानवता की बलिवेदी पर, अरमानों से मुंह मोड़ लिये।
फिर भी दुनियां की नज़रों में, हम कोई त्याग न कर पाये,
निर्झर-सम निशिदिन झर-झर भी, हम खाली सिंधु न भर पाये।
सीमित कारा में वैभव के, हम साज सजाना क्या जानें?

३

हृदय-श्मशान में क्षण-प्रतिक्षण, अनगिनत चिताएं धधक रहीं,
जलते दिल के अंगारों में, जग की आशाएं चमक रहीं।
देखो कैसा अद्भुत जादू, है उन के मौन निमंत्रण में,
सीना खोले बढ़ते जाते, मदहोश स्वयं आकर्षण में।
संकेतों पर मरने वाले हम शोर मचाना क्या जानें?

४

हम वे सागर गम्भीर नहीं, जो मर्यादा में रहते हैं,
हम तो तूफ़ानी दरिया हैं, जो बांध तोड़कर बहते हैं।
तरु होकर अपने कुसुमों को, हम कैसे स्वयं मसल डालें,
इन विद्रोही उद्गारों को, हम कैसे स्वयं कुचल डालें।
मानव हैं दानव के आगे, हम शीश झुकाना क्या जानें?

—गजराज सिंह वैद्य

चले चलो

[संगीत सौरभ]

है सामने खुला हुआ मैदां चले चलो,
बाग़े-मुराद है समर-अफ़शां चले चलो,
दरिया हो बीच में कि बयाबां चले चलो,
हिम्मत यह कह रही है खड़ी, हां, चले चलो,
चलना ही मसलहत है, मेरी जां, चले चलो।

(२)

आओ कि खोले अपने निशां नंगो-नाम ने,
बाधी कमर है कसके हर इक शाद काम ने,
क्यों इस तरह कमर को लगे थक के थामने,
दीवारे-बाग वह नज़र आती है सामने,
चिल्ला रही है– हिम्मते मर्दां, चले चलो।

(३)

हिम्मत के शहसवार जो घोड़े उठायेंगे,
दुश्मन फलक भी होंगे तो वह सर झुकायेंगे,
तूफ़ान बुलबुलों की तरह बैठ जायेंगे,
नेकी के ज़ोर उठके बदी को दबायेंगे,
पीछे हटो न एक कदम, आगे बढ़े चलो।

—आजाद

झांसी वाली रानी

[संगीत सौरभ]

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में फिर से आयी नयी जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सब ने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

२

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छायी,
किन्तु काल-गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लायी,
तीर चलाने वाले कर में, उसे चूड़ियां कब भायी,
रानी विधवा हुई हाय! विधि को भी दया नहीं आयी,

निःसंतान मरे राजा जी, रानी शोक-समानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

३

बुझा दीप झांसी का तब डलहौजी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झण्डा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झांसी आया,

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा झांसी हुई बिरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

४

छिनी राजधानी दिल्ली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदयपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात,
जबकि सिन्ध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र निपात,
बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

५

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था, अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्धूपन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रणचण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान,
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हे तो सोई ज्योति जगानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।

७

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झांसी के मैदानों में,
जहां खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों मे,
लेफ्टिनेन्ट बौकर आ पहुंचा, आगे बढ़ा जवानों मे,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,
ज़खमी हो कर बौकर भागा, उसे अजब हैरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

७

रानी बढ़ी, कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी रजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

८

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अब जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुंह की खाई थी,
काना और मन्दरा सखिया रानी के संग आई थी,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,
पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया, हाय घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।।

९

तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार,
घायल हो कर गिरी सिंहनी उसे वीर-गति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।

१०

रानी गयी सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता-रानी थी,

दिखा गयी पथ, सिखा गयी हमको जो सीख सिखानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह ता झांसीवाली नारी थी।।

—सुभद्रा कुमारी चौहान

राष्ट्रीय गान

['सम्मेलन पत्रिका'—आषाढ़, १९७८]

विमल भूमि जै,
सजल, सफल, मङ्गल, सबल, भूमि जै।। विमल भूमि जै।।
प्रकृति-देवि अंक बसत, जल-निधि नित पद परसत,
हिमगिरि वर मुकुट लसत, धवल भूमि जै।। विमल०।।
जै स-भेद चारु वेद, जै पुरान-वन अ-भेद,
दर्शन, स्मृति-युत अ-खेद, नवल भूमि जै।। विमल०।।
सिन्ध, गंग, यमुन, सु-जल अगनित नित फलत सु-फल,
सिक्ख, राजपूत, सु-दल-सबल भूमि जै।। विमल०।।
सत्याग्रहि-जननि भूमि, धर्माग्रहि करनि भूमि,
अगजग सुख भरनि भूमि, सरल भूमि जै।। विमल०।।
राम की पवित्र भूमि, श्याम की पवित्र भूमि,
गौतम सु-चरित्र भूमि, सकल भूमि जै।। विमल०।।
जै अशोक, अकबर कर, जै प्रताप, शिव, सुखधर,
दरशन तव चहत अमर, अचल भूमि जै।। विमल०।।

—बेचन शर्मा 'उग्र'

मातृभाषा महत्व

['सम्मेलन पत्रिका'—चैत्र, संवत् १९७७]

हिन्दी भारतवर्ष की, भाषा सर्वप्रधान ।
आरज कुल जातीय धन, जीवन प्रान समान ।।

निज भाषा बोलहु, लिखहु, पढ़हु, गुनहु सब लोग ।
करहु सकल विषयन विषै निज भाषा उपयोग ।।

तिहुं लोकन तें लाय नित नव्य नव्य उपहार ।
भारत-श्री चरननि धरहु, भरहु भव्य भंडार ।।

हरि, हिन्दी अउ हिन्द कौ, जिन्हें अटल अनुराग ।
सो सपूत भारत-सुअन सारथ जिअन, सुभाग ।।
मेरे हिय-सर में सदा विकसहु द्वै अरविन्द ।
हरि-पद-रति सुरभित सुभग, एक हिन्दी एक हिन्द ।।

—श्रीधर पाठक

प्रण लो !

['आनन्द कादम्बिनी' मासिक पत्रिका]

हे भाग्यहीन हत भारतवर्ष देश ?
हे हे विनष्ट धन धान्य समृद्धि लेश।
प्राचीन वैभव-विहीन मलीन वेश,
हा हा ! कहां तव गयी गरिमा विशेष ।।

२

जो थे प्रणम्य पहले तुम कीर्तिमान,
विज्ञान और बल-विक्रम के निधान।
सम्पत्ति, शक्ति निज खोकर आज भारी,
हा हा ! हुए तुम वही सहसा भिखारी ।।

३

हा ! सभ्य भाव तुम ने जिनको सिखाया,
विद्या कलादि गुण मे जिनको जिलाया।
देखो, वही अब असभ्य तुम्हे बनाते,
तौभी कभी न कुछ भी तुम चित्त लाते ।।

४

दिव्यातिदिव्य तव रत्न, अहो कहां है ?
शोभा-समूह पट-पुञ्ज, कहो कहां है ?
खोया सभी कुछ, न, हाय, तुम्हें हया है।
हे देश ! शेष तुम में रह क्या गया है ।।

५

सूई, छड़ी तक, निकृष्ट दियासलाई,
लेता सदैव सुख मे फिरता पराई।
निर्लज्ज! सोच मन में कर क्या रहा है?
क्यों व्यर्थ ही धन अपार लुटा रहा है?

६

छाई जहां अति अपार दरिद्रता है,
प्राचीन-धान्य-धन का न कही पता है।
सुप्राप्य पेट भर नित्य जहाँ न दाना,
क्या चाहिये धन वहाँ पर यों लुटाना?

७

हे देश! सप्रण विदेशज वस्तु छोड़ो,
सम्बन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरन्त उनसे मुह आज से ही,
कल्याण जान अपना इस बात मे ही।।

—माधवराव सप्रे

जापान के प्रति भारत-भूमि

[वैश्योपकारक में]

हे धर्म्मपुत्र! सुखकारक सुप्रजा के।
आनन्द वर्जन! बृहद्बल एशिया के।
प्रख्यात-रूस-बल - दर्प - विनाशकारी।
जापान! हो जय सदा रण में तुम्हारी।। १ ।।

मैंने सुनी न चिर से निज वीर-वार्ता।
प्लेग प्रपीड़ित हुई सब भांति आर्ता।
दुर्भिक्ष रोग चय मे अपनी गंवाई।
संतान, किन्तु तुजसों न करी लड़ाई।। २ ।।
सो भी त्वदीय जय दुन्दुभि नाद में मैं।
आनन्दिता जब हुई सुत याद में मैं।
शौद्धोदनी विदित जो गुरुदेव तेरा।
था शांतचित्त वह
माना कि शाक्य-मत वैदिक से निराला।
किन्तु प्रचण्ड-सुत-विग्रह से सुमाता।
भूले कभी न सुन को तनु जन्मदाता।। ४ ।।

तेरे नवोदित पराक्रम सूर्य्य से तो।
प्राची समुज्ज्वल हुई यह देख के सो।
यूरोप-शक्ति तिमिराहत हो रही है।
मर्माहिता सभय शंकित रो रही है।। ५ ।।

रूसी पराभव असम्भव मानते थे।
ऐसा बली न तुझको नर जानते थे।
तूने पराक्रम दिखा कहला लिया है।
"वीर प्रसूति अब भी यह एशिया है"।। ६ ।।

संग्राम पोतगण को क्षण में डुबा के।
'यालू' नदी समर में सब को हटा के।
आश्चर्यकारक सुदृश्य नया दिखाया।
सौभाग्य चक्र विधि ने फिर से घुमाया।। ७ ।।

उद्योग और ममता बल से बढ़ाया।
ऐसा प्रताप अवलम्ब बृटीश पाया।
इगलैण्ड मित्र जग में दबने न पाते।
कोई कभी यह सभी इतिहास गाते।। ८ ।।

रूमाधिराज कर कम्पित लेखनी में।
तेरा चरित्र कहता अब है सभी से।
कोई कभी कर सका नहिं बीर जैसा।
जापान ने अब किया बरताव वैसा।। ९ ।।

आनन्द-नृत्य-सुख-लिप्सु-कुदैव घेरे।
निद्रा निमग्न, जब थे सब बीर मेरे।
थी अर्द्ध-रात्रि जब की उसने चढ़ाई।
मेरी तरी सहित कीर्ति निजी डुबाई'।। १० ।।

है नीति संगत नहीं यह रूस बानी।
दुर्नीति तत्पर बली, वह घोर मानी।
मन्चूरिया वचन देकर भी दबाया।
ऐसा महत्व अपना उसने दिखाया।। ११ ।।

चाहे कहे वह तुझे अब बात नाना।
हे बीर! नीति अपनी मत भूल जाना।
हारे हुए धरम की सब दें दुहाई।
जीते हुए सब करें बल की बड़ाई।। १२ ।।

जो दीन हैं कब उसे वह है बचाता।
धर्मोपदेश उसका मुझको न भाता।
स्वार्थान्ध हो जब करे उपदेश कोई।
माने न बात उसकी तब देश कोई॥ १३॥

कोई कथा जब सुनीति भरी उठावे।
चीनाभियान तब दुःखद याद पावे।
सीमन्त कुल-बधू सब रो रही थी।
हा! जार शक्ति, बधिरा तब हो रही थी॥ १४॥

थे नेत्र, किन्तु न दिया कुछ भी दिखाई।
मारी गयी जब असंख्य सती लगाई।
पीतांग-रक्त-सरिता-मुख में बहाई।
हा! हा!! दया न ममता नहिं लाज आई॥ १५॥

बूढ़े, अनाथ, शरणागत को सताना।
कन्या अबोध शिशु कामिनी को रुलाना।
जो वीरता?—तब कहो निरलज्जता क्या?
मसेश-चित्र-गति का कहिये पता क्या?॥ १६॥

तू भी सुवीर! उस बार फटा हुआ था।
भाई विरुद्ध सब भांति डटा हुआ था।
क्रोधान्ध सैनिक हुए तब जर्मनी के।
काटे गये तनय, चीन अभागिनी के॥ १७॥

होता न जो कलह का घर एशिया में।
था कौन युद्ध करता फिर एशिया में?
वैरी विदेशज यहां कब ही न आते।
आते तुरन्त मिटते रहने न पाते॥ १८॥

है शक्ति नाम जग में सब मेल ही का।
सिद्धान्त सूत्र, यह किन्तु विशेष टीका।

द्रव्य प्रभाव निज से मिलके दिखाता।
गोधूम भी तुष बिना उगने न पाता ।। १९ ।।

इंगलैन्ड फ्रान्स इसका गुण गा रहे हैं।
प्रत्यक्ष संग महिमा दिखला रहे हैं।
तो भी नहीं समझते नर मूढ़ता में।
ज्यों देखते न रवि को निज अन्धता में ।। २० ।।

जो हो चुका, अब उसे चित्त में न लाना।
प्यारे महत्व अपना सबको दिखाना।
भाई वही जगत में गणनीय होवे।
मानी सहोदर विरुद्ध न बीज बोवें ।। २१ ।।

नीतिज्ञ भ्रान्त कुछ बात नयी सुनाते।
तेरे लिए समर अन्त युग बताते।
रूसेश को वह सभी रणवीर जाने।
चूहा तुझे पर उसे सब रीछ मानें ।। २२ ।।

किन्तु प्रथा अब पुरातन जा चुकी है।
उत्साह शक्ति सब नूतन आ चुकी है।
हे वत्स ! तोप अरि मार असंख्य तेरी।
होगी प्रसिद्ध रण-बीच लगै न देरी ।। २३ ।।

राधाकृष्ण मिश्र भिवानी

तिलक-स्वर्गारोहण

यह रात ! यह अंधेरा ! यह मौत-सा सन्नाटा ।
ठंडी हवा के झोंके हुंकार आफतों के ।।
घेरे खड़े दरिन्दे सब ओर सूघते हैं ।
बादल उमड़ रहे हैं ओले बरसने वाले ।।
उलझे हुए कटीले इन झाड़ झंखड़ों में ।
हम हैं खड़े अकेले आगे न पीछे कोई ।।
वह राह का दिखैया दीपक लिये कहाँ है ?

चलना बहुत नहीं है खतरा बहुत है लेकिन ।
पीछे पलट न सकते हैं राह तंग आगे ।।
चूके जहां ज़रा बस पंजों में मौत के हैं ।
लाखों मुसीबतों का सब ओर सामना है ।।
ऐसे समय हमारी आँखों का वह उजाला ।
क्या हो गया बताओ ऐ साथियो ! बताओ ।।
जायें कहां, किधर, हमें कुछ भी न सूझता है !

हम डूबते हुओं का बस एक ही सहारा ।
आगे से हाय ! किसने छलकर हटा लिया है ।।
दामन में हम गरीबों के एक ही रतन था ।
बनियों सा हौसला था किस बेरहम ने लूटा ।।
दिल एक सह रहा था जुल्मों की चोट लाखों ।
उसको अरे अचानक ! किसने कुचल दिया है ।।
बुड्ढे की हाय लकड़ी किस निर्दयी ने छीनी !

फंदों में फंस के बिलकुल बेकार बन चुके थे ।
हम रात दिन गरीबी की मार सह रहे थे ।।
आँधी के पत्ते ऐसे थे दर-बदर भटकते ।
अपमान सह रहे थे फटकार सह रहे थे ।।

सब कष्ट झेलते थे थामे हुए कलेजा ।
बस, देखकर तुम्हें हम हिम्मत न हारते थे ।।
प्यारे तिलक कहां हो ! प्यारे तिलक कहां हो ! !

आंखें खुली तुम्हारी ऐसी सुबह में होंगी ।
जिसकी न शाम होगी सुख काम अंत होगा ।।
ऐसी हैं रात हम को चारों तरफ से घेरे ।
जिसके सुबह की कुछ भी दिखती नहीं सफेदी ।।
सुनसान इस अंधेरे में साथ सिर्फ दो है ।
हरि नाम ओंठ पर है सिर पर खड़ी बला है ।।
ऐ लोकमान्य ! ऐसी हालत में तुम ने छोड़ा !

आर्यों की सभ्यता के आदर्श रूप तुम थे ।
भारत में एक ही थे तुम लोकमान्य नेता ।।
निर्भीक सत्यवादी धर्मिष्ठ संयमी थे ।
ज्योतिष गणित के ज्ञानी वेदों के पूर्ण ज्ञाता ।।
थे राजनीति के तुम वक्ता सतर्क मेधा ।
शंकर के बाद जग को पंडित मिले तुम्हीं थे ।।
भारत की आंख के तिल माथे के तुम तिलक थे ।।

हरदम हमारे हित की तुम को लगी लगन थी ।
सुख सोचते हमारा तुम जेल में गये थे ।।
सहधर्मिणी की सहकर दुख से भरी जुदाई ।
तुमने हमारे हित में क्षण भर भी मुंह न मोड़ा ।
भगवान के कथन का तुमने रहस्य खोला ।
गीता-रहस्य रच कर संदेह सब मिटाया ।।
संसार में गजब का था बुद्धि बल तुम्हारा ।।
मर्दानगी से हरदम हित के लिए हमारे ।
तुमने मुसीबतों को निर्भय गले लगाया ।।

-०२३५

धन का न लोभ तुमको तन का न लोभ तुमको ।
मानापमान का भी कुछ भी न ख्याल तुमको ।।
हर एक पल दिया था जीवन का तुमने हमको ।
सर्वस्व तुम ने हम पर था कर दिया निछावर ।।
ऐ लोकमान्य ! क्या-क्या सुधि हम करें तुम्हारी ।।

हमको स्वराज्य का हक इंगलैंड से दिलाने ।
तुम थे गये विलायत, जाते अमेरिका भी ।।
पाते अपार इज्जत पर छोड़ लालसा यह ।
आये चले हमारा कल्याण सोचने को ।।
निस्वार्थ लोक-सेवा, यह देश प्रेम सच्चा ।
हा दैव ! अब कहां पर देगा हमें दिखाई ।।
रो रो पुकारते हैं, प्यारे तिलक कहां हो !

रोते ही रोते कितनी सदियां गुजार डालीं ।
तदबीर को हजारों रोना न हमसे छूटा ।।
तुम स्वर्ग से थे आये ढाढ़स हमें बंधाने ।
यह कौन जानता था तुम भी रुला चलोगे ।।
जो लोकमान्य ! तुमको बदले में मौत देती ।
ले लेते हम खुशी से देकर के जान लाखों ।।
रोने से ऐसे मरना अपना हमें है प्यारा ।।

रोओ अभागे भारत ऐ बदनसीब रोओ ।
टूटी भुजा तुम्हारी गांधी जी आज रोओ ।।
खोकर के सच्चा साथी रोओ ऐ मालवीजी ।
ऐ लाजपत अकेले अब फूट-फूट रोओ ।।
रोओ ! ऐ मुल्क रोओ, जी भर के आज रोओ ।
हम मंद भाग्य सारे बह जायं आंसुओं में ।।
ऐसा रतन गंवा के चुप कौन रह सकेगा ।।

वही वीर है

[संगीत सौरभ]

वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो,
तलवारों की छाया में भी निज संदेश सुना दे जो।

यों तो इस दुनिया में आकर बहुत मनुज जीते-मरते,
अरे! पेट तो इस अवनी पर कीट पतंगे भी भरते।
रोज देखते हैं हम सोनेवाले भी फलते न यहां,
कितनी ही लाशों पर रोनेवाले भी मिलते न यहां।

वही अमर है अपने मरने से पाषाण रुला दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

देख दुखी को द्रवित हो गया जिसका उर तत्काल अरे,
सुनकर करुण पुकार उठे लोहू में गरम ज्वाल अरे।
जो पीड़ित की पीड़ा हर ले, उसे शूर हम कह सकते,
कौन बात हीरे-पन्नों की, कोहनूर हम कह सकते।

अपना जीवन-दीप बुझे, पर जीवन दीप जला दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

विकट विपत्ति के बांध बेधकर, बढ़ा चले मैदानों में,
सुभट सुमति ले सके नहीं, उठते आंधी मैदानों में।
कौन साथ है चलने वाला, सोचे बिना अकेला ही,
शत्रु दलों को चीर गिरा दे, बन नरसिंह अकेला ही।

जौहर की ज्वाला से जग में जीवन-ज्योति जगा दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

पर्वत से संघर्ष मचाके, पार न जाये पानी क्या,
यदि तूफानी जोर नहीं, तो उठती हुई जवानी क्या।
वह जवान भी क्या जिसमें उठते सागर के ज्वार नहीं,
अंगारों पर जो चलने को रहता है तैयार नहीं।

वही वीर है मर मिटने में पहला नाम लिखा दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

जिसकी यश-उजियारी से शुभ पथ का दर्शन सभी करें,
और जगत् के नर-नारी घी के समाधि पर दीप धरें।
भारत-भू के कण-कण में इतिहास मिले-नर-पुंगव का,
गीत निराला गूंज उठे गिरि शिखरों में नव विप्लव का।

आज विश्व को कर्मयोग का पावन पाठ पढ़ा दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

—हरिनन्दन मिश्र

गणतंत्र स्वागत

[संगीत सौरभ]

सम्राटों की सत्ता कांपी, भूपों के सिंहासन डोले।
गणतन्त्र तुम्हारे आते ही, जन-जन जागे, कण-कण बोले।
गणतन्त्र तुम्हारे स्वागत में, प्राणों के पुष्प बिछाये हैं,
आजादी के परवानों ने, हंस-हंस कर शीश चढ़ाये हैं।

२

आओ-आओ निज जननी को, जुग-जुग गणतंत्र निहाल करो,
फिर गौरवशीला माता का, भू-तल पर उन्नत भाल करो।
डग-डग पर डगमग करने को, पग-पग पर पड़े प्रलोभन हैं,
पथ-भ्रष्ट कहीं मत हो जाना, मोहक, रमणी, धरणी धन हैं।

३

गण-गण में गुण-गण विकसित हों, कण-कण से कायरता भागे,
मन-मन में भद्र भाव उमगे, जन-जन में नैतिकता जागे।
समता, स्वतन्त्रता बन्धु भाव से गूंज उठे पृथिवी सारी,
यह लोक 'सत्य सुन्दर' हो, मानवता मंगलकारी।

४

रण रोप-रोप नरमेध न हों, सुख-शान्ति, प्रेममय प्राणी हों,
बसुधा कुटुम्ब-सम बन जाये, मानव गति-मति कल्याणी हो।
जन-सेवा नित निष्काम करें, सहयोग-नीति अपनायें सब,
सतयुग-सा युग फिर आ जाये, घर-घर को स्वर्ग बनायें सब।

—हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'

पथिक से

[संगीत सौरभ]

पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जीवन के कुसुमित उपवन में गुंजित मधुमय कण-कण होगा।
शैशव के कुछ सपने होंगे मदमाता-सा यौवन होगा।
उस यौवन की उच्छृंखलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

पथ में कांटे तो होंगे ही, दूर्वादल सरिता सर होंगे,
सुन्दर गिरि, सर, वापी होंगी, सुन्दर-सुन्दर निर्झर होंगे।

सुन्दरता की मृगतृष्णा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

यौवन के अल्हड़ वेगों मे बनता-मिटता छिन-छिन होगा,
माधुर्य सरसता देख-देख खा प्यासा तन-मन होगा।

क्षण भर की क्षुधा - पिपासा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

जब कठिन कर्म-पगडंडी पर राही का मन उन्मुख होगा,
जब सब सपने मिट जायेंगे कर्तव्य-मार्ग सम्मुख होगा।

तब अपनी प्रथम विफलता में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

अपने भी विमुख पराये बन आंखों के सम्मुख आयेंगे,
पग-पग पर घोर निराशा के काले बादल छा जायेंगे।

तब अपने एकाकीपन में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

जब चिर-संचित आकांक्षाएं पल भर में ही ढह जायेंगी,
जब कहने सुनने को केवल स्मृतियां बाकी रह जायेंगी।

बिचलित हो उन आघातों में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

हाहाकारों मे आवेष्टित तेरा मेरा जीवन होगा,
होंगे विलीन यह मादक स्वर मानवता का क्रन्दन होगा।

विस्मित हो उन चीत्कारों में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

रणभेरी सुन कह 'विदा' जब सैनिक पुलक रहे होंगे,
हाथों में कुंकुम थाल कुछ लिये जल-कण ढुलक रहे होंगे।

कर्त्तव्य प्रणय की उलझन मे,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

वेदी पर बैठा महाकाल जब नर-बलि चढ़ा रहा होगा,
बलिदानी अपने ही कर मे निज मस्तक बढ़ा रहा होगा।

तब उस बलिदान-प्रतिष्ठा में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

कुछ मस्तक कम पड़ते होंगे जब महाकाल की माला में,
मां मांग रही होगी आहुति जब स्वतन्त्रता की ज्वाला में।

पल भर भी पड़ असमंजस में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

—शिवमंगल सिंह 'सुमन'

स्वतंत्रता के दीवाने

[संगीत सौरभ]

जब रण करने को निकलेंगे स्वतन्त्रता के दीवाने ।
धरा धंसेगी प्रलय मचेगी, व्योम लगेगा थर्राने ।

बहन कहेगी जाओ भाई, कीर्ति-कौमुदी छिटकाना ।
पुत्र कहेगा पिता शत्रु का, झण्डा छीन मुझे लाना ।
स्वाभिमानिनी मा कह देगी, लाज दूध की रख आना ।
और कहेगी पत्नी प्रियतम, विजयी हो स्वागत पाना ।
सब पुरवासी लोग हर्ष से, फूल लगेंगे बर्साने ।
जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने ।।१।।

उधर गर्वपूरण रिपुदल का, कटक अपार खड़ा होगा ।
इधर स्वयंसेवक दल कर में, झण्डा लिये अड़ा होगा ।
उन्हें तोप-तलवार-तीर का, मन में गर्व बड़ा होगा ।
इधर अहिंसा का उर में भी, जोश उमड़ा होगा ।
उत्साही कवियों की कविता, शौर्य लगेगी बर्साने ।
जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने ।।२।।

गोदी सूनी हो जावेंगी, कितनी ही माताओं की ।
और चूड़ियां भी उतरेंगी, कितनी ही अबलाओं की ।
घिर आयेगी शिशुओं पर भी, घोर घटा विपदाओं की ।
जब कि चलेगी भारत भू पर, वह आंधी अन्यायों की ।
ऐसा आर्तनाद होगा वह, लग जावेंगे दहलाने ।
जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने ।।३।।

—अज्ञात कवि